CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

फ़रवरी १९६३

स्वामी विवेकानन्द

५० नये पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ष ४४

वैदिक धर्म

अंक २

क्रमांक १६९ : फरवरी १९६३

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ दुष्टोंका विनाश (वैदिक प्रार्थना) ३५
२ वेदविषयक कतिपय जिज्ञासा
श्री. श्रुतिशील शर्मा ३६
३ विचारों और भावनाओंकी एकता
श्री. जे. कृष्णमूर्ति ३९
४ वैदिक राष्ट्र-गीत श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ४१
५ नेताजीकी वाणी अनु.- श्री कृष्णदत्त ५३
६ अग्निके तीन भ्राता
डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ५८
७ कर्म और पुनर्जन्म श्री. टी. एम्. पी. महादेवन ६९
८ वेदगीता और भगवद्गीता
पं. जगन्नाथ शास्त्री, न्यायभूषण ३२७ से ३३४

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १–३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है।

भाग ५–६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

भाग ७–१० इनमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

भाग ११ इसमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है।

भाग १३–१८ इनमें क्रियापद–विचारकी पाठविधि बताई है।

भाग १९–२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है।
प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. =)
२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १।)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो. ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०
डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो.–' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आय धर्मोंको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता— (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता— (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता— (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें) १६) २)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि ,, ,,	२)	.२५
३ शुनःशेप ,, ,,	१)	.२१
४ हिरण्यस्तूप ,, ,,	१)	.२५
५ काण्व ,, ,,	२)	.२५
६ सव्य ,, ,,	१)	.२५
७ नोधा ,, ,,	१)	.२५
८ पराशर ,, ,,	१)	.२५
९ गोतम ,, ,,	२)	.३७
१० कुत्स ,, ,,	२)	.३७
११ त्रित ,, ,,	१.५०	.३१
१२ संवनन ,, ,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ ,, ,,	.५०	.१२
१४ नारायण ,, ,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति ,, ,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी ,, ,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा ,, ,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि ,, ,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ ,, ,,	७)	१)
२० भरद्वाज ,, ,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ माघ : विक्रम संवत् २०१९

वैदिकधर्म

दुष्टोंका विनाश

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य
कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन
निर्दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥

ऋ० ५।२९।१०

हे इन्द्र ! (सूर्यस्य अन्यत् चक्रं) सूर्यके रथका एक चक्र (प्र अवृहः) तूने पृथक् किया और (अन्यत्) दूसरा चक्र (कुत्साय) कुत्स ऋषिको (वरिवो यातवे अकः) धनकी प्राप्ति करनेके लिये दिया। (अ-नासः दस्यून्) नासिका रहित दुष्टोंको तूने (वधेन अमृणः) शस्त्रसे मार दिया और (मृध्रवाचः) अभद्र बोलनेवाले दुष्टोंको तूने (दुर्योणे) युद्धमें (नि आवृणक्) मारा, वध किया ॥

अ-नासः— नासिका जिनकी नहीं है। चपटी नाकवाले। (चीनी)

अन्-आसः— जिनके मुखसे शब्दोंका बोलना ठीक नहीं होता।

अनासः दस्यून् वधेन अमृणः— जिनकी नाक नहीं, अथवा जो ठीक शब्द नहीं बोल सकते उन दुष्टोंको तूने शस्त्रसे मारा।

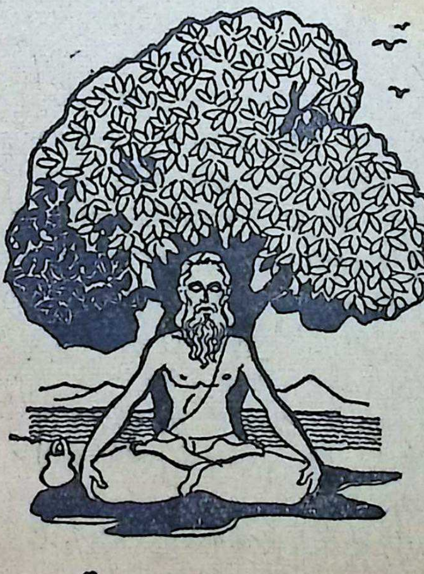

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदविषयक कतिपय जिज्ञासा

(लेखक— श्री श्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि)

सबसे पहले मैं एक बात स्पष्ट कर दूं कि इस लेखमें मेरा उद्देश्य किसी सिद्धान्तका खण्डन-मण्डन करना या किसीके सिद्धान्तको आघात पहुंचाना नहीं है, अपितु अपनी जिज्ञासाका समाधान पाना ही है। अतः विनम्रभावसे मैं इस लेखके द्वारा विद्वानोंके पास पहुंच रहा हूँ, और आशा भी है कि यथोचित रूपसे मेरी इस जिज्ञासाका समाधान मुझे प्राप्त होगा।

विद्वानोंका, विशेषकर आर्यसमाजका यह सिद्धान्त है, कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, और करुणामय ईश्वरने सृष्टिके आदिमें जीवोंके कल्याणार्थ चार ऋषियों पर प्रकट किए थे। जो परम्परासे आजतक चले आते हैं। ये वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद रूपसे चार हैं।

पर इसके साथ कुछ लोगोंकी धारणा यह भी है, कि पहले वेद एक ही था, जिसे बादमें व्यासजीने पृथक्-पृथक् करके चार वेदोंका रूप दिया। महाभारतमें कहा भी है—

एक एव पुरा वेदाः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥

ऐसी भी एक कथन परम्परा प्रचलित है कि समस्त (एकीभूत) वेदको चार रूपोंमें व्यस्त (पृथक्-पृथक्) करनेके कारण कृष्ण द्वैपायनका नाम व्यास पड़ा।

अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः।
विव्यास वेदान् यस्मात्तस्मात् व्यासः प्रकीर्त्तितः॥

अस्तु, इस मतको पर्याप्त प्रमाणोंके अभावमें आलोच्य पक्षमें भी स्थापित किया-जा सकता है।

वेदोंकी संहितायें

आजतक वेदोंकी अनेक संहितायें बन चुकी हैं। ऋग्वेदकी 'आश्वलायन संहिता' और 'शांख्यायन-संहिता' आज भी यत्र तत्र उपलब्ध हैं, इसीप्रकार यजुर्वेदके भी 'शुक्ल' और 'कृष्ण' भेदसे दो भेद हैं, शुक्लमें भी 'वाजसनेयि' और 'काण्व' रूपसे दो पृथक् पृथक् संहितायें हैं। इसीतरह सामवेद तथा अथर्व वेदकी भी अनेक संहितायें हैं। इन संहिताओंमें परस्पर भेद है। कृष्ण यजुर्वेदकी 'तैत्तिरीय संहिता' और शुक्लकी 'वाजसनेयि संहिता' में आकाश पातालका भेद है। शुक्ल यजुर्वेदकी वाजसनेयि और काण्व संहिताओंमें भी आपसमें भेद है। ऋग्वेदमें भी कुछ विद्वानोंके अनुसार शांख्यायन और आश्वलायन संहिताओंमें भेद है। ऋग्वेदका बहुचर्चित सूक्त 'वालखिल्य' वस्तुतः 'शांख्यायन संहिता' का भाग है 'आश्वलायन संहिता' का नहीं, ऐसा भी कतिपय विद्वानोंका मत है।

अब इतनी विवेचनाके बाद कई प्रश्न मस्तिष्कके चारों ओर मंडराते हैं, कि यदि सृष्टिकी आदिमें ईश्वरने वेद चार ऋषियोंपर प्रकट किए तो वे किस रूपमें थे ? अर्थात् ईश्वरने 'अग्नि' ऋषि पर जो ऋग्वेद उतारा, वह शांख्यायन संहिताका रूप था, या आश्वलायन संहिताका। इसी प्रकार 'वायु' ऋषि पर जो यजुर्वेद उतारा, वह 'कृष्ण यजुर्वेद' था या 'शुक्ल यजुर्वेद' और 'शुक्ल यजुर्वेद' में भी वह 'काण्वसंहिता' थी या 'वाजसनेयिसंहिता'। यदि 'कृष्ण' यजुर्वेद उतारा था, तो 'शुक्ल' यजुर्वेद किस प्रकार और कहांसे अस्तित्वमें आया ? अथवा यदि 'शुक्ल' यजुर्वेद उतारा तो 'कृष्ण' यजुर्वेद किस प्रकार और कहांसे अस्तित्वमें आया ? यदि सृष्टिकी आदिमें प्रकट हुए हुए यजुर्वेदका रूप कुछ और ही था, तो वह मूल यजुर्वेद कहां नष्ट हो गया ? पर महर्षिके अनुसार तो सृष्टिके आदिमें जो वेद प्रकट हुए थे, वे ही आज तक चले आ रहे हैं। उनमें रत्ती भरका भी फरक नहीं पड़ा। यदि ऐसा ही है तो फिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वही प्रश्न उठ खडा होता है, कि सृष्टिकी आदिमें जो यजुर्वेद प्रकट हुआ था, वह 'कृष्ण' था या 'शुक्ल'? आज उत्तर भारतमें 'शुक्ल यजुर्वेद' की वाजसनेयि संहिता' को प्रमुखता दी जाती है और दक्षिण भारतमें 'कृष्ण यजुर्वेद' की 'तैत्तिरीय संहिता' को और शुक्लकी 'काण्व संहिता' का उपयोग बहुत कम है।

यदि वेद ईश्वर प्रदत्त हैं तो ये दो भेद कैसे हो गए? और इनमें कौनसा वेद मूल है? यदि सृष्टिकी आदिमें प्रकट हुआ हुआ यजुर्वेद कृष्ण और शुक्लका मिला जुला रूप था तो बादमें इन दोनोंको पृथक् किसने किया? आज आर्यसमाज कृष्णकी अपेक्षा शुक्लको और उसमें भी 'काण्व संहिता' की अपेक्षा 'वाजसनेयिसंहिता' को क्यों प्रधानता देता है? ये प्रश्न केवल तभी उत्पन्न होते हैं, जब कि वेदोंको ईश्वर प्रदत्त माना जाए; अन्यथा वेदोंको ऋषिकृत मान लेनेपर इन प्रश्नोंके लिए कोई स्थान नहीं, क्योंकि ऋषियोंकी मतिवैविध्यके कारण वेदोंकी भिन्न-भिन्न संहिताओंका अस्तित्वमें आना संभव है।

उपर्युक्त प्रश्न विचारणीय हैं, पर इनके लिए गंभीर अध्ययनकी भी आवश्यकता है।

क्या याज्ञवल्क्य वाजसनेयिसंहिताके कर्त्ता थे?

आज जिस संहिताको प्रधान या मुख्य माना जाता है, उसी वाजसनेयि संहिताके विषयमें एक अद्भुत कथा प्रसिद्ध है। वह कथा इस प्रकार है—

'याज्ञवल्क्यके गुरु वैशम्पायनने अपने शिष्यको तैत्तिरीय संहिताका ज्ञान दिया। पर बादमें कुछ कारणवश वैशम्पायन याज्ञवल्क्यसे क्रुद्ध हो गए और शाप दिया, कि तू मेरे दिए हुए ज्ञानको भूल जाएगा। वही हुआ, याज्ञवल्क्य सारा ज्ञान भूल गए। तब उन्होंने आदित्यकी उपासना की और आदित्यने प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्यको यजुः का ज्ञान दिया, और इस प्रकार वाजसनेयिसंहिता अस्तित्वमें आई। पर चूंकि याज्ञवल्क्यने गुरुद्रोहका पाप किया था, अतः कोई ब्राह्मणपुत्र उनसे वेदज्ञान सीखने नहीं आया, तब याज्ञवल्क्यने शूद्रोंको इकट्ठा किया और उन्हें यजुष्का ज्ञान दिया। शूद्रोंका उच्चारण ठीक न था, इसलिए वे 'ष' को 'ख' और 'य' को 'ज' बोलते थे। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त' को 'जग्येन जग्यमजयन्त' और 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' को 'सहस्रशीर्खा पुरुखः' बोलते थे। इसीलिए पारस्करगृह्य सूत्रके हरिहर भाष्यके विवाहप्रकरण तथा गौड निबन्धमें कहा है—

'शूद्रा वाजसनेयिनः'

वाजसनेयिके अनुयायी शूद्र हैं। महाभारतमें भी कहा है—

आदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप।
(म. भा. शान्ति. ३२३।२)

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'हे जनक! मैंने आदित्यसे यजुओंको प्राप्त किया'।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेदके कई मंत्रोंके पढनेपर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इन मंत्रोंको ऋषियोंने ही बनाया है, जैसे—

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वा
अवोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव॥ ऋ. १०।१२०।९

'इस प्रकार महान् बृहद्दिवा अथर्वाने कहा है'। आश्चर्य यह है कि इस मंत्रका ऋषि स्वयं 'बृहद्दिव अथर्वा' ही है। यदि ऋषि केवल मंत्रद्रष्टा ही होते, तो मंत्रमें स्वयं उस ऋषिका नाम कैसे आ सकता था। और वह भी ऋषि 'मैं ऐसा कहता हूं' इस अभिमानके साथ मंत्रमें स्वयंका वर्णन कर रहा है।

इस प्रकार इस विस्तृत विवेचनामें मेरी जो जिज्ञासा मैंने दिखाई हैं, वे निम्न हैं—

(१) सृष्टिके आदिमें ईश्वरने अग्नि ऋषि पर जो ऋग्वेद उतारा, वह 'आश्वलायन संहिता' का ऋग्वेद था या 'शांखायन संहिता' का?

(२) इन संहिताओंका नाम 'आश्वलायन' और 'शांखायन' इन ऋषियोंके नामोंपर क्यों पडा? क्या ये इस बातके निदर्शक नहीं हैं कि ये संहितायें इन्हीं ऋषियोंके द्वारा रची गई अथवा एकत्रित की गई हैं?

(३) 'वालखिल्य सूक्त' केवल 'शांखायन' का ही भाग क्यों माना जाता है 'आश्वलायन' का क्यों नहीं? 'आश्वलायन संहिता' में यह सूक्त प्रक्षिप्त क्यों माना जाता है, जैसा कि 'वैदिक सम्पत्तिकार' भी मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) सृष्टिके आदिमें 'वायु' ऋषिपर ईश्वरने कौनसा यजुर्वेद प्रकट किया, 'कृष्ण यजुर्वेद' या 'शुक्ल यजुर्वेद'?

(५) यदि 'शुक्ल यजुर्वेद' प्रकट किया था, तो 'कृष्ण यजुर्वेद' किस प्रकार अस्तित्वमें आया? इसी प्रकार यदि माना जाए कि 'कृष्ण यजुर्वेद' प्रकट किया था, तो 'शुक्ल यजुर्वेद' किस प्रकार अस्तित्वमें आया?

(६) 'शुक्ल यजुर्वेद' में भी 'वाजसनेयि' और 'काण्व' संहिताके रूपमें दो संहितायें किस प्रकार और क्यों बनीं?

(७) आर्यसमाज 'शुक्ल यजुर्वेद' को ही क्यों प्रधानता देता है, 'कृष्ण' को क्यों नहीं? 'शुक्ल' में भी वह 'वाजसनेयि' को ही क्यों प्रधानता देता है 'काण्व संहिता' को क्यों नहीं?

(८) यहां पर भी 'काण्व संहिता' और 'वाजसनेयि संहिता' के साथ 'काण्व' और 'वाजसनेय' ऋषियोंका नाम क्यों जुडा हुआ है? ईश्वरप्रदत्त वेदोंमें इन ऋषियोंके नामोंको जोडनेका क्या प्रयोजन? क्या यहां भी ये नाम इस बातके निदर्शक नहीं हैं कि ये संहितायें इन्हीं ऋषियों द्वारा एकत्रित की गई हैं?

(९) पारस्कर गृह्यसूत्रके हरिहर भाष्यके विवाह प्रकरण में 'शूद्राः वाजसनेयिनः' कहकर 'वाजसनेय संहिता' के माननेवालोंको शूद्र क्यों कहा गया है?

(१०) इन अपौरुषेय वेदोंमें परस्पर पाठभेद कैसे हो गए?

(११) मंत्रोंमें उन ऋषियोंका नाम कैसे आ गया, जिन मंत्रोंके वे स्वयं ही ऋषि हैं; जैसे कि ऊपर मंत्र देकर बताया है—

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वा अवोचत्।

ऋ. १०।१२०।९

इस मंत्रका ऋषि स्वयं 'बृहद्दिव अथर्वा' ही है और वह ही मंत्रमें कह रहा है कि 'महान् बृहद्दिव अथर्वा ने इस प्रकार कहा'। इस मंत्रमें स्वयं ऋषिका नाम कैसे आ गया? क्या यह भी इस बातका द्योतक नहीं है कि इस मंत्रका रचयिता स्वयं 'बृहद्दिव अथर्वा' ही है।

ये कतिपय जिज्ञासायें हैं। मुझे प्रसन्नता होगी यदि वेदोंके विद्वान् मेरी इन जिज्ञासाओंका समाधान कर सकें।

पृष्ठसंख्या ६९०] **चाणक्य-सूत्राणि** [मूल्य १२) डा.व्य. १)

आर्य चाणक्यके ५७१ सूत्रोंका हिन्दी भाषामें सरल अर्थ और विस्तृत तथा सुबोध विवरण। भाषान्तरकार तथा व्याख्याकार स्व. श्री रामावतारजी विद्याभास्कर, रतनगढ (जि. बिजनौर)। भारतीय आर्य राजनैतिक साहित्यमें यह ग्रन्थ प्रथम स्थानमें वर्णन करने योग्य है यह सब जानते हैं। व्याख्याकार भी हिन्दी जगत्में सुप्रसिद्ध हैं। भारत राष्ट्र अब स्वतन्त्र है। इस भारतकी स्वतन्त्रता स्थायी रहे और भारत राष्ट्रका बल बढे और भारत राष्ट्र अग्रगण्य राष्ट्रोंमें सन्मानका स्थान प्राप्त करे, इसकी सिद्धता करनेके लिये इस भारतीय राजनैतिक ग्रन्थका पठन पाठन भारतभरमें और घरघरमें सर्वत्र होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये इसको आज ही मंगवाइये।

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संयुक्त राज्य अमेरिकाके नभोवाणीसे प्रसारित एक वार्ता—

विचारों और भावनाओंकी एकता

(लेखक- श्री. जे. कृष्णमूर्ति)

⊙

[बाह्यसंसारके समान अध्यात्मसंसारमें भी निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। इन दोनों संघर्षोंका एक ही कारण है, एकात्मकताका अभाव। अध्यात्मसंसारमें अर्थात् मानवशरीरमें जब मस्तिष्क और हृदयका सामंजस्य नहीं रहता, दूसरे शब्दोंमें, जब विचार और भावनाओंका परस्पर मेल नहीं बैठता, तो उनमें संघर्षका जन्म होता है। जो इन दोनोंको आपसमें जोड देता है, वह एक निश्चल योगी तथा वेदके शब्दोंमें 'अथर्वा' बन जाता है। अथर्ववेदके एक मंत्रमें कहा है—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥

इसी वेदके मन्तव्यको भारतके विख्यात विचारक श्री जे. कृष्णमूर्त्तिने अपने शब्दोंमें स्पष्ट किया है- सम्पादक]

मेरा मत यह है कि सत्य एक मार्गहीन भूमि है और किसी भी मार्ग, धर्म अथवा सम्प्रदाय द्वारा उस सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता। यह सत्य एक असीमित, देश-कालसे अप्रभावित तथा अगम्यतत्त्व होनेके कारण संगठित नहीं किया जा सकता अथवा इसे कोई मूर्तरूप भी नहीं दिया जा सकता। किसी संगठनका निर्माण भी असम्भव है, जो किसी विशेष मार्ग द्वारा इस सत्य तक पहुंचा सके। सर्वप्रथमतः तो विश्वास या श्रद्धाको संगठित रूप देना ही असम्भव है। क्यों? इसलिए कि श्रद्धा पूर्णतया एक वैयक्तिक सम्पत्ति है। अतः इसे कोई संगठित रूप नहीं दे सकता और न किसीको वैसा करनेका प्रयत्न ही करना चाहिए।

यदि कोई ऐसा करता है, तो श्रद्धा मृत हो जाती है, और वह एक सम्प्रदाय, मजहब अथवा मतका रूप धारण कर लेती है, जिसे दूसरों पर जबरन लादना पडता है। आज सारे संसारमें इसी प्रकारके प्रयत्न जारी हैं। आज सत्यको बहुत संकुचित कर दिया गया है। सत्यको कभी झुकाया नहीं जा सकता अपितु इसतक पहुंचके लिए तुम्हें ही उस तक चढनेके लिए प्रयत्न करना पडेगा। पर्वतशिखर तक पहुंचनेके लिए यदि तुम चाहो, कि पर्वतशिखरको उपत्यकामें ले आया जाए, तो यह असम्भव ही होगा, शिखर तक पहुंचनेके लिए तुम्हें उपत्यकामेंसे गुजरना होगा, चढाई चढनी होगी तथा मार्गके खतरोंकी तरफसे तुम्हें निर्भय होना होगा। अतः जिसप्रकार तुम चढकर ही पहाडकी चोटी पर पहुंच सकते हो, उसे झुकाकर नहीं, उसी प्रकार सत्य तक पहुंचनेके लिए तुम्हें उस तक चढना होगा, तुम सत्यको झुका नहीं सकते।

समाज या संगठन तुम्हें मुक्त नहीं बना सकता और नाही तुम्हारी अन्तरात्माका विकास कर सकता है। कोई भी बाहरका व्यक्ति या संगठित पूजा प्रार्थना तुम्हें मुक्त नहीं करा सकती। इसीलिए मेरा उद्देश्य यहां किसी नये धर्म, नये सम्प्रदाय, नये सिद्धान्त अथवा नये दर्शनकी स्थापना करना नहीं है। यहां मेरा प्रयोजन एक ही तत्त्वसे है- मनुष्यकी वास्तविक मुक्ति।

मैं उस मनुष्यकी भरसक सहायता करूंगा, जो सभी सीमाओंसे परे होना चाहता हो, तथा धर्म, मुक्ति, आध्यात्मिकता, प्रेम, मृत्यु और जीवन इन सभीके भयोंसे छूटना चाहता हो। मेरी इच्छा यही है, कि मनुष्य बिना किसी शर्तके स्वतंत्र हो। मेरा मत है कि नित्य आत्माके साथ अनाचार न करना अथवा आत्महनन न करना ही वास्तविक आध्यात्मिकता है। यह बुद्धि (Reason) और हृदयकी (Love) एकात्मकताकी अवस्था है, यही उच्चतम सत्य है और यही है उच्चतम जीवन।

वास्तविक मुक्ति अथवा आत्माका श्रेष्ठात्मासे एकीभाव नियमोंसे बंधा हुआ नहीं है। इसका नीच कोटिके उपद्रवों अथवा कामनाओंके साथ कोई भी अथवा किसी प्रकारका भी सम्बन्ध नहीं है। यह सभी नियमों व उपद्रवोंसे परे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यह वह बीज है, जिससे सभी पदार्थोंका आविर्भाव होता है, जिससे सभी परिवर्तन उद्भूत होते हैं तथा जिस पर सभी पदार्थ आश्रित हैं। यदि तुम्हें उस आत्मैक्यकी चाह है, जिसमें सत्य निहित है, तो तुम्हें प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें रहनेवाली आत्माका सम्मान करना होगा और आत्मदर्शक या आत्मचिन्तक होना होगा।

यह आत्मा क्या है? यह 'मैं' ही आत्मा है। यह 'मैं' कहां है? यह 'मैं' मस्तिष्कमें है। विचारोंमें है। 'मैं' एक स्नेह या प्रेमकी भावना है। इस मस्तिष्क और हृदय अर्थात् विचारों और भावनाओंके ऐकात्म्य स्थापित करनेमें ही सत्यका प्रकाशन है। जो विचार और भावनाओंके मध्यमें चलनेवाले संघर्षको जान या समझ नहीं पाते वे इस संघर्षको देखकर घबडा जाते हैं। फलतः वे इस ऐकात्म्यका स्थापन कर नहीं पाते। तुमने अपने चारों तरफ असत्यतत्वोंका पहाड खडा रखा है, ताकि वे इन संघर्षके क्षणोंमें तुम्हें सुख दे सकें। तुम इन संघर्षोंके विरुद्ध मुकाबला करो, इन पहाडोंको तोड डालो।

जब तुम यह एकात्मता स्थापित कर लेते हो, तो फिर पूजा, प्रार्थना, आदि सब तुम्हारे लिए अनावश्यक हो जाते हैं। तुम्हें इन पूजा, प्रार्थना आदिके लिए प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं रहेगी, ये सब तुम्हारे लिए उसीप्रकार स्वाभाविक हो जायेंगे, जैसे कलियोंका प्रातःकालमें फूल बन जाना।

यह संघर्ष पूर्णतया वैयक्तिक है। पर तुम्हें किस तरह संघर्ष करना चाहिए यह मैं तुम्हें नहीं बता सकता। मैं नये साधनों व तरीकोंका निर्माण नहीं कर सकता, जो तुम्हें इस संघर्षमें पथ दर्शा सकें अथवा तुम्हें सुख दे सकें। तुम्हें इसके लिए पुरुषार्थी बनना होगा, दृढ होना होगा, स्वतंत्र होना होगा; हमेशा आश्रयकी खोजमें रहनेवाले बच्चेके समान बनना तुम्हारे लिए शोभादायक नहीं है।

इस एकात्मताको पानेके लिए तुम्हें अपने हृदयमें प्रेम उपजाना होगा, जो पूर्णतया क्रियात्मक है। आज तुम्हारा प्रेम अपने ही वैयक्तिक पसन्द और नापसन्दके साथ जुडा हुआ है। तुम्हें किस देवताकी पूजा करनी चाहिए, किन क्रियाओंको तुम्हें करना चाहिए, किन धर्मोंका अनुयायी तुम्हें बनना चाहिए, इन्हीं झगडोंमें आज तुम सब लगे हुए हो। यह ही तुम्हारा मुख्य उद्देश्य बन गया है और तुम उस सीमा तथा भेदरहित प्रेमको बिल्कुल भूल गए हो।

तुम्हें संघर्षके द्वारा, ज्ञानके द्वारा इस एकात्मता तक पहुंचना ही चाहिए।

मस्तिष्क और हृदय दोनों एक ही तत्वसे बने हुए हैं, अतः तुम्हें उस तत्वकी पवित्रता पर ध्यान देना चाहिए और हमेशा इस बातकी सावधानी रखनी चाहिए कि विचार और प्रेमसे समन्वित यह तत्त्व विकृत न हो जाये। जिस क्षण मस्तिष्क विचारोंमें भेद उत्पन्न कर देता है, उसी क्षण विचार सीमित हो जाते हैं, फलतः दुःखकी उत्पत्ति भी हो जाती है। अतः मस्तिष्क और हृदय अर्थात् विचारों और भावनाओंके सीमित और विकृत न होनेमें ही सच्चा आनन्द, सच्ची मुक्ति और सत्यतत्त्व निहित है।

[चिरप्रतीक्षित पुस्तक] [छप गई

गीता- पुरुषार्थबोधिनी (हिन्दी)

चिरप्रतीक्षित पुस्तक 'पुरुषार्थबोधिनी' छपकर तैय्यार हो गई है। इस पुस्तकके लिए कई पाठकोंके पत्र प्राप्त हुए इसलिए शीघ्र छापनी पडी। आप भी शीघ्रसे शीघ्र आर्डर दीजिए। मूल्य डाक व्यय सहित १५) रु.

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पो. 'स्वाध्याय मण्डल, पारडी', पारडी (जि. सूरत)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

वैदिक राष्ट्र-गीत

[अथर्ववेद काण्ड १२ का प्रथम सूक्त । ऋषि–अथर्वा । देवता – मातृभूमि ।]

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

★

[अथर्व वेदमें 'भूमिसूक्त' नामसे बारहवें काण्डका प्रथम सूक्त ही है। यह 'मातृभूमिका ही सूक्त' है। इसमें 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (अथर्व १२।१।१२) 'मेरी भूमि माता है और मैं उस माताका पुत्र हूं।' ऐसा स्पष्ट कहा है।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें 'मातृभूमिको धारण करनेवाले सात शुभ गुणोंको' गिनाया है। लोग इनको अपने अन्दर धारण करें और अपनी मातृभूमिका गौरव बढावें।

'जो हमसे द्वेष करता है, जो हमारे ऊपर अपनी सेना भेजता है, अथवा जो हमें दास बनानेका विचार करता है, उसका मातृभूमि नाश करे।' ऐसा कह कर सब शत्रुओंका नाश करनेका आदेश दिया है। (मंत्र १४)

'अनेक भाषाएं बोलनेवाले नाना धर्मोंके लोगोंको यह मातृभूमि एक घरके मनुष्योंके समान धारण करती है।' यह वैशिष्ट्य अपनी मातृभूमिका ४५ वें मंत्रमें कहा है, इससे संघटन कैसा होना चाहिये, यह सूचित किया है।

इस प्रकार अनेक उत्तम उपदेश इस सूक्तमें हैं, पाठक इसको पढें और अधिक विचार करके लाभ उठावें।]

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्यु-
रुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

(सत्यं) सत्य, (बृहद् ऋतं) बडा ऋत, (उग्रं) उग्रता, (दीक्षा) दक्षता, (तपः) शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करना, (ब्रह्म) ज्ञान और विज्ञान, (यज्ञः) सत्कार संगठन–दान, ये सात शुभ गुण (पृथिवीं धारयन्ति) मातृभूमिको धारण करते हैं। (सा) वह (नः भूतस्य भव्यस्य पत्नी) हमारे भूत भविष्यका पालन करनेवाली (पृथिवी) मातृभूमि (नः) हमें (उरुं लोकं कृणोतु) व्यापक कार्य क्षेत्र निर्माण करके देवे ॥ १ ॥

मातृभूमिको धारण करनेवाले सात गुण ये हैं। (१) 'सत्य' सचाई, (२) 'बृहद् ऋत' बडा नियम–पालन उचित नियम–पालन, (३) उग्रं– उग्रता, (४) दीक्षा– दक्षता, दक्ष जीवन, (५) तपः– शीत उष्ण आदि अनेक द्वन्द्वोंको सहन करनेकी शक्ति, (६) ब्रह्म– ब्रह्मज्ञान और उत्तम व्यवहारका ज्ञान, (७) यज्ञ– जो सत्कारके योग्य हों उनका सत्कार, आपसका संगठन और असक्तोंके लिये योग्य सहायता करनेका दातृत्व ये सात गुण मातृभूमिको धारण करते हैं। इसलिये राष्ट्रके लोगोंमें ये सात गुण विकसित हों ऐसी शिक्षा जनताको मिलनी चाहिये।

भूतस्य भव्यस्य पत्नी— भूतकालमें जो हुआ, वर्तमान कालमें जो हो रहा है, और भविष्यमें जो होगा, उस सब लोकव्यवहारका परिणाम मातृभूमिपर होता है। इस-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये तीनों कालोंमें मातृभूमिके सुपुत्रोंको उत्तम व्यवहार करने चाहिये, जिससे मातृभूमिपर सुयोग्य परिणाम ही होता रहे और कदापि मातृभूमिपर हमारे सदोष व्यवहारका कुपरिणाम न हो।

उरुं लोकं नः पृथिवी कृणोतु— हमारी मातृभूमि हमारे लिये हरएक उत्तम क्षेत्रमें विस्तृत कार्य क्षेत्र देवे। ऐसा कभी न बने कि मातृभूमिके कार्यक्षेत्रपर शत्रुका अधिकार जम जाय. और मातृभूमिके पुत्र उसके क्षेत्रसे वंचित रहें।

असंबाधं बध्यतो मानवानां
यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति
पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥

जिस हमारी मातृभूमिमें (मानवानां बध्यतः असंबाधं) मनुष्योंके बीचमें कोई झगडा नहीं है, (यस्याः) जिस मातृभूमिमें (उद्वतः प्रवतः बहुसमं) कुछ ऊंचे और कुछ नीचे प्रदेश हैं, पर बहुतसा भाग समतल है। (या नानावीर्याः ओषधीः बिभर्ति) जो मातृभूमि नाना प्रकारकी गुणकारी औषधि वनस्पतियोंको धारण करती है वह (पृथिवी) मातृभूमि (नः प्रथतां) हमें बढावे और (नः राध्यतां) हमें समृद्ध करे ॥ २ ॥

१ मानवानां बध्यतः असंबाधं— जिस मातृभूमिके मानवोंके बीचमें झगडे नहीं हैं। मातृभूमिमें मानवोंमें परस्पर झगडे नहीं होने चाहिये। संगठन होकर एकता रहनी चाहिये।

२ पृथिवी नः प्रथतां, नः राध्यतां— मातृभूमि हमें बढावे और हमें समृद्ध करे।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्
सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥

(यस्यां समुद्रः उत सिन्धुः आपः) जिस मातृभूमिमें समुद्र, नदी और अनेक जल प्रवाह हैं (यस्यां कृष्टयः अन्नं सं बभूवुः) जिसमें किसान अन्न उत्पन्न करके संगठित होकर रहते हैं, (यस्यां इदं प्राणत् एजत् जिन्वति) जिसमें यह श्वास लेनेवाला, और चलनेवाला उत्साहके कार्य करता है, (सा नः भूमिः) वह हमारी मातृभूमि हमें (पूर्वपेये दधातु) अपूर्व रसपानमें स्थापित करे ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्याः
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्
सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥

(यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवीकी (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाएं ऐसी हैं, कि (यस्यां अन्नं) जिसमें अन्न होता है और जिसमें (कृष्टयः संबभूवुः) किसान लोग संगठित होकर रहते हैं। (या प्राणत् एजत् बहुधा बिभर्ति) जो मातृभूमि श्वास लेनेवालों और चलनेवालोंका अनेक प्रकारसे पोषण करती है, (सा भूमिः) वह मातृभूमि (नः) हमें (गोषु अपि अन्ने दधातु) गौओंमें तथा अन्नमें स्थापित करे ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा
भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

(यस्यां पूर्वे पूर्वजनाः) जिसमें हमारे पूर्वकालके पूर्वजनोंने (विचक्रिरे) विशेष पराक्रम किये थे, (यस्यां देवाः असुरान् अभि अवर्तयन्) जिसमें देवोंने असुरोंका पराभव किया था, जिसमें (गवां अश्वानां वयसः च) गौवों, घोडों और पक्षियोंके (वि-ष्ठाः) विशेष स्थान हैं, वह (पृथिवी) हमारी मातृभूमि (नः भगं वर्चः दधातु) हमें भाग्य और तेज देवे ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा
हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्नि
इन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(विश्वं-भरा) सबको धारण करनेवाली (वसु-धानी) अपनेमें धन रखनेवाली (प्रति-ष्ठा) सबको स्थान देनेवाली (हिरण्य-वक्षा) अपने अन्दर सुवर्ण आदि धारण करनेवाली (जगतः निवेशनी) जगत्को आरामका स्थान देनेवाली, (वैश्वा-नरं अग्निं) सबको जीवित रखनेवाले अग्निको (बिभ्रती भूमिः) धारण करनेवाली मातृभूमि (इन्द्र-ऋषभा) इन्द्रकी पत्नी (नः द्रविणे दधातु) हमें धनमें रखे ॥ ६ ॥

१ हिरण्य-वक्षा— जिसकी खानोंमें सुवर्ण है।

२ वैश्वानरं अग्निं बिभ्रती— सबमें नेतृत्व करनेवाले अग्निको धारण करनेवाली। शरीरमें अग्नि ही नेतृत्व करता है, शरीरमें उष्णताके रहनेतक ही सब कार्य शरीरावयवोंसे होते हैं।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं
देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहां
अथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

(अ-स्वप्नाः देवाः) आलस्य रहित होकर देव (यां पृथिवीं भूमिं) जिस विस्तृत मातृभूमिका (अ-प्रमादं विश्वदानीं रक्षन्ति) प्रमाद न करते हुए सर्वदा रक्षण करते हैं, (सा नः मधु प्रियं दुहां) वह मातृभूमि हमें मधुर और प्रिय दूध देवे (अथो) और (वर्चसा उक्षतु) तेजसे हमें युक्त करे ॥ ७ ॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्
सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८

(या अग्रे) जो प्रारंभमें (अर्णवे अधि) समुद्रमें (सलिलं आसीत्) द्रवरूप थी, (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोगोंने (यां मायाभिः अन्वचरन्) जिसकी अनेक मायाशक्तियोंसे सेवा की थी, (यस्याः अमृतं हृदयं) जिसका अमर हृदय (परमे व्योमन्) परम आकाशमें (सत्येन आवृतं) सत्यसे ढका हुआ है, (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि हमारे (उत्तमे राष्ट्रे) उत्तम राष्ट्रमें (त्विषिं बलं दधातु) तेज और बल धारण करावे ॥८॥

१ सा भूमिः नः उत्तमे राष्ट्रे त्विषिं बलं दधातु- वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्रमें तेजस्विता तथा बल धारण करावे।

यस्यामापः परिचराः समानीः
अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहां
अथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

(यस्यां परिचराः समानीः आपः) जिसमें घूमनेवाले समान जल प्रवाह (अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति) अहोरात्र प्रमाद न करते हुए चलते हैं, (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (भूरिधारा पयो दुहां) अनेक धाराओंवाली होकर दूध दुहे (अथो) और (वर्चसा उक्षतु) हमें तेजस्वितासे संयुक्त करे ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः १०

(अश्विनौ यां अमिमातां) अश्विनौने जिसको मापा है, (यस्यां विष्णुः विचक्रमे) जिसपर विष्णुने पराक्रम किये। (शचीपतिः इन्द्रः) शक्तिके स्वामी इन्द्रने (यां आत्मने अनमित्रां चक्रे) जिसको अपने लिये शत्रुरहित बनाया, (सा नो माता भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (मे पुत्राय पयः विसृजतां) मुझ पुत्रके लिये दूध देवे ॥ १० ॥

१ अश्विनौ यां अमिमातां— अश्विनौने जिसका मापन किया।

२ यस्यां विष्णुः विचक्रमे— जिसपर विष्णुने विक्रम किये और शत्रुओंको दूर किया।

३ शचीपतिः इन्द्रः यां आत्मने अनमित्रां चक्रे- सामर्थ्यवान् इन्द्रने जिस भूमिको शत्रुरहित बनाया।

४ सा भूमिः मे पयः विसृजतां — वह भूमि हमारे लिये पर्याप्त दूध देवे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो
अरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतो
अध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि! (ते गिरयः हिमवन्तः पर्वताः) तेरी पहाडियां और हिमाच्छादित पर्वत और (ते अरण्यं स्योनं अस्तु) तेरे अरण्य हमारे लिये सुखदायी हों। (अहं) मैं (अजीतः अहतः अक्षतः) पराजित न होकर, मारा न जाकर, क्षत विक्षत न होकर (बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां) भूरे रंगकी, काली, लाल तथा अनेक रंगोंवाली (ध्रुवां भूमिं इन्द्र-गुप्तां पृथिवीं) स्थिर भूमि, जो इन्द्रने सुरक्षित की है, उसपर (अध्यष्ठां) अध्यक्ष होकर रहूं ॥ ११ ॥

हमारी मातृभूमिके तथा आसपासके पर्वत, पहाड तथा जंगल हमारे लिये सुख देनेवाले हों। इनमें शत्रु घुसकर हमें कष्ट देनेवाले न बनें। मैं विजयी बनकर मातृभूमिका अध्यक्ष बनकर मातृभूमिकी उत्तम शासन करके सेवा करूं।

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं
यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व
माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि! (यत् ते मध्यं) जो तेरा मध्य भाग है, (यत् च नभ्यं) जो ऊपरका भाग है, और (याः ते ऊर्जः तन्वः) जो तेरे बल बढानेवाले शरीरके भाग तेरे अन्दर हैं, (तासु नः धेहि) उनमें हमें रख, (नः अभि पवस्व) हमें सब प्रकारसे पवित्र कर (भूमिः माता) भूमि मेरी माता है, (अहं पृथिव्याः पुत्रः) मैं पृथिवीका पुत्र हूं, (पर्जन्यः पिता) पर्जन्य सब उपजका उत्पन्न करनेवाला पिता है (सः उ नः पिपर्तु) वह हमें पूर्ण करे ॥ १२ ॥

भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमिका पुत्र हूं। सब लोग इस बातको स्मरण रखें।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां
यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यां
ऊर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयत् वर्धमाना ॥ १३ ॥

(यस्यां भूम्यां) जिस भूमिमें (वेदिं परिगृह्णन्ति) वेदीकी रचना करके उस वेदीके चारों ओर घेरकर बैठते हैं। ये (विश्वकर्माणः) सब कर्म करनेवाले याजक (यस्यां यज्ञं तन्वते) जिसमें यज्ञ कर्मको फैलाते हैं। (यस्यां पृथिव्यां) जिस पृथिवीपर (शुक्राः) चमकनेवाले (आहुत्याः पुरस्तात्) आहुति देनेके स्थानके सामने (ऊर्ध्वाः स्वरवः मीयन्ते) ऊंचे स्तंभ खडे किये जाते हैं, (सा नः भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (वर्धमाना वर्धयत्) बढती हुई हमें बढावे ॥ १३ ॥

जिस मातृभूमिमें यज्ञ करनेवाले याजक वेदी तैयार करके वेदीके चारों ओर बैठकर यज्ञ करते हैं। उत्तम यूप यज्ञ स्थानके सामने खडा करते हैं। वह हमारी मातृभूमि यज्ञसे संपन्न होती हुई हमें संपन्न करे।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद्
योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि! (यः नः द्वेषत्) जो हमसे द्वेष करे। (यः पृतन्यात्) जो हमारे ऊपर सेनासे चढाई करे, (यः मनसा अभि दासात्) जो मनसे हमें दास बनानेकी इच्छा करे, (यः वधेन) जो हमारा वध करके नाश करना चाहे, हे (पूर्व-कृत्वरि भूमे) पहिलेसे ऐसे उत्तम कार्य करनेवाली मातृभूमे! (तं नः रन्धय) उसको हमारे हित करनेके लिये विनष्ट कर ॥ १४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्याः
त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा
येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥

(त्वज्जाताः मर्त्याः) तुझसे उत्पन्न हुए सब मनुष्य (त्वयि चरन्ति) तेरे अन्दर विचरण करते हैं, (त्वं द्विपदः त्वं चतुष्पदः) तू मनुष्यों, पक्षियों तथा पशुओंका (बिभर्षि) पालन पोषण करती है। हे (पृथिवि) मातृभूमे! (इमे पञ्चमानवाः तव) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद, ये पांच प्रकारके लोग तेरे ही पुत्र हैं। (येभ्यः मर्त्येभ्यः उद्यन् सूर्यः) जिन मनुष्योंके लिये उदय होकर सूर्य (रश्मिभिः) अपने किरणोंसे (अमृतं ज्योतिः आतनोति) अमर ज्योति फैलाता है ॥ १५॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्राः
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥

(ताः समग्राः प्रजाः) वे सब प्रजाएं (नः सं दुह्रतां) हमारे लिये उत्तम रीतिसे दूध आदि अन्न देवें। हे (पृथिवि) मातृभूमि! (वाचः मधु मह्यं धेहि) वाणीकी मधुरता मेरे लिये दे ॥ १६ ॥

मातृभूमिपर रहनेवाली प्रजाएं परस्पर मधुर भाषण करें। कभी कठोर भाषण आपसमें न करें।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥

(विश्व-स्वं) सर्वस्व रूपसे (ओषधीनां मातरं) औषधियोंकी माता (ध्रुवां) स्थिर (धर्मणा धृतां) धर्मसे धारण की हुई (शिवां स्योनां) कल्याण करनेवाली तथा सुख देनेवाली (पृथिवीं भूमिं) विस्तृत मातृभूमिकी (विश्व-हा अनुचरेम) अपने जीवनके सब दिन हम सेवा करते रहें ॥ १७ ॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ
महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥

(महती) बडी तू (महत् सधस्थं बभूविथ) सबके लिए मिलकर रहनेका बडा स्थान बनी है। (एजथुः ते वेपथुः) तेरे हिलने और कांपनेका (महान् वेगः) बडा वेग है। (महान् इन्द्रः) बडा इन्द्र (त्वा अप्रमादं रक्षति) तेरी प्रमादके विना रक्षा करता है। हे (भूमे) पृथिवि! (सा नः) वह तू हमें (हिरण्यस्य संदृशि इव प्ररोचय) सोनेकी चमकके समान तेजस्वितामें हमें चमका, (नः कश्चन मा द्विक्षत) हमसे कोई द्वेष न करे ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीषु
अग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥

(अग्निः भूम्यां) अग्नि भूमिमें है, (ओषधीषु) औषधियोंमें है, (अग्निं आपः बिभ्रति) अग्निको जल धारण करते हैं, (अश्मसु अग्निः) पत्थरोंमें अग्नि है, (अग्निः पुरुषेषु अन्तः) अग्नि पुरुषोंके अन्दर है, (गोषु अश्वेषु अग्नयः) गौवों और घोडोंमें अग्नियें हैं ॥ १९ ॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेः
देवस्योर्व१न्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते
हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

(अग्निः दिवः आ तपति) अग्नि द्युलोकसे आकर यहां पृथिवीपर तपती है, (अग्नेः देवस्य उरु अन्तरिक्षं) अग्नि देवका स्थान विशाल अन्तरिक्ष है। (मर्तासः अग्निं इन्धते) मनुष्य अग्निको प्रदीप्त करते हैं, वह अग्नि (हव्यवाहं घृतप्रियं) हव्योंको देवोंतक पहुंचाती है और उस अग्निको घी प्रिय है ॥ २० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूः
त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमे! तू (अग्नि-वासाः) अग्नि रूप वस्त्र पहने हुई है, तथा (अ-सित-ज्ञूः) काले घुटनोंवाली-काले पांववाली है। तू (त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु) मुझे तेजस्वी और तीक्ष्ण बना ॥ २१ ॥

पृथिवीमें चारों तरफ अग्नि है, पर वह पृथिवी काले रंगवाली है। तथापि वह अपने भक्तको तेजस्वी बना सकती है।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु
जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

(भूम्यां) इस भूमिमें (देवेभ्यः) देवोंके लिये (यज्ञं अरंकृतं हव्यं ददति) यज्ञ तथा तैयार किया हुआ हव्य देते हैं। (भूम्यां) इस भूमिपर (मनुष्याः मर्त्याः) मरणधर्मा मनुष्य (स्वधया अन्नेन जीवन्ति) अपनी निजशक्तिसे तथा अन्नसे जीवित रहते हैं। (सा भूमिः) वह भूमि (नः प्राणं आयुः दधातु) हमें प्राण और दीर्घ आयु देवे और (पृथिवी) वह मातृभूमि (मा जरदष्टिं कृणोतु) मुझे वृद्ध अवस्थातक जीवित रहनेवाला बनावे ॥ २२ ॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव
यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे
तेन मा सुरभिं कृणु
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमे! (यः ते गन्धः संबभूव) जो सुवास तुझमें प्रकट हुआ है (यं ओषधयः बिभ्रति) जिसको औषधियां धारण करती हैं, (यं आपः) जिसको जल धारण करते हैं, (यं गंधर्वाः अप्सरसः च भेजिरे) जिसको गंधर्व और अप्सराओंने अपना भाग बनाया है (तेन मा सुरभिं कृणु) उससे मुझे सुगन्धित कर, (नः कश्चन मा द्विक्षत) हमसे कोई द्वेष न करे ॥ २३ ॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश
यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे
तेन मा सुरभिं कृणु
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥

(यः ते गन्धः अग्रे पुष्करं आविवेश) जो तेरा गन्ध पहिले कमलमें था, (अमर्त्याः) देवोंने (यं गंधं सूर्यायाः विवाहे संजभ्रुः) जिस गंधको सूर्याके विवाहमें तैयार किया था, हे (पृथिवि) भूमि! (तेन मा सुरभिं कृणु) उससे मुझे सुगंधित कर (कश्चन नः मा द्विक्षत) कोई हमसे द्वेष न करे ॥ २४ ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि संसृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

हे (भूमे) मातृभूमे! (यः ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु) जो तेरा गन्ध पुरुषोंमें और स्त्रियोंमें है, (पुंसु भगः रुचिः) पुरुषोंमें जो भाग्य और कान्ति है, (यः अश्वेषु वीरेषु) जो घोडोंमें और वीरोंमें (यः मृगेषु उत हस्तिषु) जो मृगोंमें और हाथियोंमें है, (कन्यायां यत् वर्चः) कन्यामें जो कान्ति है, (तेन अस्मान् अपि संसृज) उससे हमें युक्त कर, (कश्चन नः मा द्विक्षत) कोई भी हमसे द्वेष न करे ॥ २५ ॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥

(शिला) पत्थर, (भूमिः अश्मा) जमीन, पाषाण और (पांसुः) धूलि (सा भूमिः) वह सब भूमि ही हैं, (संधृता धृता) यह उत्तम रीतिसे सुरक्षित रखी तो ही वह सुरक्षित होती है। (तस्यै हिरण्य-वक्षसे) उस सुवर्णको अपनी छातीमें धारण करनेवाली (पृथिव्याः) मातृभूमिको (नमः अकरं) मैं नमस्कार करता हूं ॥२६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७॥

(यस्यां) जिस भूमिपर (वृक्षाः वानस्पत्याः) वृक्ष और वनस्पतियां (विश्व-हा ध्रुवाः तिष्ठन्ति) सदा खडी रहती हैं, (विश्वधायसं) सबको धारण करनेवाली तथा (धृतां पृथिवीं) उत्तम रीतिसे संभालनेवाली उस भूमिका हम (अच्छा आवदामसि) उत्तम रीतिसे वर्णन करते हैं ॥ २७ ॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां
मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥

(उदीराणाः उत आसीनाः) उठते हुए या बैठते हुए (तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः) खडे हुए या चलते हुए (दक्षिण-सव्याभ्यां पद्भ्यां) दायें और बायें पावोंसे (भूम्यां मा व्यथिष्महि) भूमिको कष्ट न दें ॥ २८ ॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि
क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं
घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥

(विमृग्वरीं) शुद्ध करनेवाली (क्षमां) सहनशील (ब्रह्मणा वावृधानां) ज्ञानसे बढनेवाली (पृथिवीं भूमिं) विस्तृत भूमिका (आ वदामि) मैं वर्णन करता हूं कि हे (भूमे) भूमे! (ऊर्जं पुष्टं) बल और पुष्टिको और (घृतं अन्न-भागं बिभ्रतीं) घी तथा अन्नभागको धारण करनेवाली (त्वा अभिनिषीदेम) तुझ पर हम बैठें ॥ २९ ॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु
यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

(शुद्धाः आपः) शुद्ध जल (नः तन्वे क्षरन्तु) हमारे शरीरकी शुद्धता करनेके लिये बहते रहें, (यः नः सेदुः) जो हमारा मल है (तं अप्रिये नि दध्मः) उसको हम शत्रुपर डालते हैं, और हे (पृथिवि) भूमे! (पवित्रेण मा उत् पुनामि) पवित्रसे मैं अपने आपको पवित्र करता हूँ ॥ ३० ॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीः
यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु
मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

(याः ते प्राचीः प्रदिशः) जो तेरे प्रदेश पूर्व दिशामें हैं, (याः उदीचीः) जो प्रदेश उत्तर दिशामें हैं, (याः ते अधरात्) जो तेरे नीचेके प्रदेश हैं, और हे (भूमे) भूमे! (याः च पश्चात्) जो पीछेके प्रदेश हैं, (चरते मह्यं) चलनेवाले मेरे लिये (ते स्योनाः भवन्तु) वे प्रदेश सुखदायक हों, (मा निपप्तं) मैं न गिरुं (भुवने शिश्रियाणः) तेरे भुवनमें आश्रय लेकर मैं रहूं ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तात्
नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो
वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

(नः पश्चात् मा) न हमारे पीछेसे, (मा पुरस्तात्) न सामनेसे (मा उत्तरात्) न ऊपरसे (उत अधरात्) और न नीचेसे (नः मा नुदिष्ठाः) हमें कोई नीचेकी ओर ढकेल दे। हे (भूमे) भूमे! (नः स्वस्ति भव) हमारे लिये कल्याण करनेवाली हो, (परिपंथिनः मा विदन्) दुष्ट, बुरे मार्गसे जानेवाले हमें न जानें। (वधं वरीयः यावय) मारक शस्त्र हमसे दूर हटा दे ॥ ३२ ॥

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

हे (भूमे) मातृभूमे! (मेदिना सूर्येण) आनन्द देनेवाले सूर्यके प्रकाशसे (यावत् ते अभि विपश्यामि) जितना तेरा भाग मैं विशेष रूपसे देखता हूँ, (तावत् मे चक्षुः) उतनी दूर मेरा नेत्र (उत्तरां उत्तरां समां) अगले अगले वर्षोंमें (मा मेष्ट) क्षीण शक्तिवाला न बने ॥ ३३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यच्छयानः पर्यावर्ते
दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं
यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे
सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥

हे (भूमे) मातृभूमे ! (यत् शयानः) जब मैं लेटता हुआ (दक्षिणं सव्यं पार्श्वं) दायीं या बायीं करवट पर (अभि पर्यावर्ते) पलटता हूं, (उत्तानाः) ऊपरसे (प्रतीचीं) नीचे पडी (त्वा) तुझपर (यत् पृष्टीभिः अधिशेमहे) जब पीठकी हड्डियोंसे सीधे ऊपर लेटता हूँ, हे (सर्वस्य प्रतिशीवरि) सबके नीचे लेटी हुई (भूमे) मातृभूमे ! (तत्र नः मा हिंसीः) वहां हमें हानि न पहुंचा ॥ ३४ ॥

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

हे (भूमे) भूमे ! (यत् ते विखनामि) जो मैं तेरा भाग खोदता हूं (क्षिप्रं तत् अपि रोहतु) शीघ्र ही वह फिर बढे । हे (विमृग्वरि) शोधनेवाली ! (ते मर्म) तेरे मर्मको (ते हृदयं) तेरे हृदयको (मा मा अर्पिपम्) किसी प्रकार भी हानि नहीं पहुंचाऊं ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि
शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीः
अहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

हे (भूमे) भूमि ! (ते वसन्तः ग्रीष्मः वर्षाणि शरत् हेमन्तः शिशिरः) तेरे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमन्त और शिशिर ये छ (ऋतवः) ऋतु (हायनीः विहिताः) नियमसे वर्षमें आते हैं, वे ऋतु (अहोरात्रे) और अहोरात्र (नः दुहातां) हमें दूध देवें या अन्न देवें ॥ ३६ ॥

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी
यस्यामासन्नग्नयो मे अप्स्वन्तः
परा दस्यून् ददती देवपीयून्
इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

(या विमृग्वरी) जिस शुद्ध करनेवालीने (सर्पं अप विजमाना) वृत्ररूपी सर्पको कंपाकर फेंक दिया, (यस्यां अप्सु अन्तः अग्नयः आसन्) जिसमें जलोंमें अग्नियें थीं। जो (देवपीयून् दस्यून् परा ददती) देवोंके निन्दक दस्युओंको दूर फेंकती हैं और (पृथिवी) यह पृथिवी (वृत्रं न) वृत्रको नहीं अपितु (इन्द्रं वृणाना) इन्द्रको वरती है। उस पृथिवीने (वृषभाय वृष्णे शक्राय दध्रे) बलवान् सामर्थ्यवान् इन्द्रको धारण किया है ॥ ३७ ॥

यस्यां सदो हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८

(यस्यां सदः) जहां सभाके स्थान और (हविर्धाने) हवि रखनेके स्थान होते हैं, (यस्यां यूपः निमीयते) जिसमें यूप खडा किया जाता है, (यस्यां) जिसमें (ब्रह्माणः) ब्राह्मण (ऋग्भिः साम्ना यजुर्विदः अर्चन्ति) ऋचाओंसे, सामसे तथा यजु जाननेवाले यजुसे अर्चना करते हैं। (यस्यां ऋत्विजः युज्यन्ते) जिसमें ऋत्विज योग्य कार्य करते हैं और (इन्द्राय पातवे सोमं) इन्द्रके पीनेके लिये सोम तैयार करते हैं ॥ ३८ ॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

(यस्यां पूर्वे भूतकृतः ऋषयः) जिसमें प्राचीन समयके भूतकालका इतिहास लिखनेवाले ऋषियोंने (गाः उदानृचुः) मंत्रोंको उच्च स्वरसे गाया था और (वेधसः) ज्ञानियोंने (सप्त सत्रेण) सात सत्र (यज्ञेन तपसा सह) यज्ञ और तपके साथ कार्य करके किये थे ॥ ३९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

(सा नः भूमि) वह हमारी भूमि (यत् धनं कामयामहे) जिस धनकी इच्छा हम कर रहे हैं, (आदिशतु) वह हमें देवे। (भगः अनुप्रयुंक्तां) भग साथ रह कर प्रेरणा करे और (इन्द्रः पुरो-गवः एतु) इन्द्र हमारे आगे चले ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान्
असपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

(यस्यां भूम्यां) जिस भूमिपर (व्यैलबाः मर्त्याः) बडी ध्वनि करनेवाले मनुष्य (गायन्ति नृत्यन्ति) गाते हैं और नाचते हैं। (यस्यां युध्यन्ते) जिसमें युद्ध करते हैं, (आक्रन्दः) जिसमें बडे शब्द करते हैं (यस्यां दुन्दुभिः वदति) जिसमें दुन्दुभि बजती है, (सा नः भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (सपत्नान् प्रणुदतां) शत्रुओंको दूर ढकेल दे और (पृथिवी मा असपत्नं कृणोतु) पृथिवी मुझे शत्रुरहित बनावे ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

(यस्यां अन्नं व्रीहियवौ) जिसमें अन्न चावल और जौ होते हैं, (यस्याः इमाः पञ्च कृष्टयः) जिसके ये पांच जातिके मानव हैं। उस (पर्जन्यपत्न्यै वर्षमेदसे भूम्यै) पर्जन्य जिसका पति है और वृष्टि जिसका मेद है उस (भूम्यै नमः अस्तुः) भूमिके लिये मेरा प्रणाम हो ॥ ४२ ॥

पञ्च कृष्टयः— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच जातिके लोग हैं।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भा-
माशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

(यस्याः पुरः देवकृताः) जिस परकी नगरियां देवोंने बनायी हैं, (यस्याः क्षेत्रे विकुर्वते) जिसके क्षेत्रमें लोग विशेष कार्य करते रहते हैं, उस (विश्व-गर्भां पृथिवीं) विश्वको गर्भमें धारण करनेवाली पृथिवीको (प्रजापतिः) प्रजाका पालक (नः आशां आशां) हमारे लिये प्रत्येक दिशामें (रण्यां कृणोतु) रमणीय बनावे ॥ ४३ ॥

देव कृताः पुरः— इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या, रामपुर आदि नगरियां देवोंके नामसे प्रसिद्ध हैं।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु
मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना
देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

(बहुधा गुहा वसु निधिं बिभ्रती) बहुत प्रकारसे गुहामें धनके निधिको जो धारण करती है, (मे पृथिवी मणिं हिरण्यं ददातु) मुझे वह पृथिवी रत्न और सुवर्ण देवे। (वसुदा रासमाना) धन देनेवाली सुप्रसन्न होकर (सुमनस्यमाना देवी) उत्तम मनवाली वह पृथिवी देवी (नः वसूनि दधातु) हमें धनोंको देवे ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

(बहुधा विवाचसं) अनेक प्रकारकी भाषाएं बोलनेवाले (जनं बिभ्रती) लोगोंको धारण करनेवाली (पृथिवी) मातृभूमि (नानाधर्माणं यथौकसं) नाना धर्मोंके लोगोंको एक घरके लोगोंके समान धारण करती है। यह भूमि (अनपस्फुरन्ती ध्रुवा धेनुः इव) न हिलनेवाली सुस्थिर गौके समान (द्रविणस्य सहस्रं धारा मे दुहां) धनकी सहस्रों धाराएं मुझे दुह कर देवे ॥ ४५ ॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा
हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति
प्रावृषि तन्नः सर्पन् मोप सृपद्
यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(यः ते सर्पः) जो तेरा सर्प और (तृष्ट-दंश्मा वृश्चिकः) तीखा दंश करनेवाला बिच्छू (हेमन्त-जब्धः भृ-मलः गुहा शये) हेमन्तकी सर्दीसे कष्टी होकर गुहामें सुस्त होकर सोता है और (क्रिमिः) जो कृमि, हे (पृथिवि) भूमे! (प्रावृषि जिन्वत् यत् यत् एजति) बरसातमें जीवन प्राप्त करके जब चलने लगता है, (तत् नः सर्पन्) वह हमारे समीप चलता हुआ (मा उपसृपत्) न आ जाय। (यत् शिवं तेन नः मृड) जो कल्याण करनेवाला है उससे हमें सुखी कर ॥ ४६ ॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना
रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापाः
तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

(ये ते बहवो पन्थानः) जो तेरे बहुतसे मार्ग (जनायनाः) लोगोंके चलने योग्य हैं, (रथस्य वर्त्मा) रथका मार्ग तथा (अनसः च यातवे) गाडीके जानेके लिये मार्ग है, (यैः उभये भद्र-पापाः संचरन्ति) जिनसे भले बुरे दोनों चलते हैं, (तं पंथानं जयेम) उस मार्ग-पर हम विजय प्राप्त करें, जिसपर (अनमित्रं अतस्करं) शत्रु और चोर न हों, (यत् शिवं तेन नः मृड) जो कल्याण करनेवाला है उससे हमें सुखी कर ॥ ४७ ॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्
भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥

(मल्वं बिभ्रती) मूर्खको धारण करनेवाली तथा (गुरु भृत्) गुरु [ज्ञानी] को धारण करनेवाली (भद्र-पापस्य निधनं) कल्याणकारी और पापीका मरण (तितिक्षुः) सहन करती है, (वराहेण पृथिवी संविदाना) वराहके साथ यह पृथिवी मेल रखती है और (सूकराय मृगाय विजिहीते) सूअर जैसे जानवरके लिये खुली रहती है ॥ ४८ ॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने
हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित
ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥

(ये ते आरण्याः पशवः) जो तेरे अरण्यमें रहनेवाले पशु हैं, (मृगाः) मृग आदि (वने हिताः) वनमें रहनेवाले (सिंहाः व्याघ्राः पुरुषादः चरन्ति) सिंह बाघ आदि मनुष्योंको खानेवाले फिरते हैं; (उलं वृकं) गीदड और भेडिया (दुच्छुनां ऋक्षिकां रक्षः) दुष्ट रीछनी और राक्षस इनको हे (पृथिवि) भूमि! (अस्मत् अप बाधय) हमसे दूर हटा ॥ ४९ ॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ५०

(ये गंधर्वाः अप्सरसः) जो गंधर्व और जो अप्सराएं हैं (ये च अरायाः किमीदिनः) जो दुष्ट और खाऊ हैं (पिशाचान् सर्वा रक्षांसि) रक्त पीनेवाले और सब राक्षस हैं, हे (भूमे) भूमि! (तान् अस्मत् यावय) उन सबको हमसे दूर हटा ॥ ५० ॥

१ गंधर्वाः— जिनके शरीरमें बदबू आती है,

२ अप्सरसः— जो दुष्ट प्राणी पानीमें या पहाडीपर रहते हैं।

३ अ-रायाः— जो निर्धन हैं,

४ किमीदिनः— आज क्या खाऊं ऐसा विचार करनेवाले भूखे, खाऊ, ‘किं इदं, किं इदं इति सर्वानपि अदन्ति इति किमीदिनः’ यह क्या है, यह क्या है कहकर सब कुछ खा जानेवाले ‘किमीदिनः’ होते हैं।

५ पिशाचाः— रक्त पीनेवाले,

६ रक्षांसि— जिनसे बचनेका यत्न करना योग्य है।

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति
हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते
रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(यां द्विपादः पक्षिणः) जिसपर दो पांववाले पक्षी (हंसाः सुपर्णाः शकुनाः वयांसि) हंस, गरुड, चिडियां और दूसरे पक्षी (संपतन्ति) मिलकर उडते रहते हैं। (यस्यां) जिस पर (मातरिश्वा वातः) आकाशमें फैला हुआ वायु (रजांसि कृण्वन्) धूली उडाता हुआ (वृक्षान् च्यावयन् ईयते) वृक्षोंको गिराता हुआ चलता है। जिसमें (अर्चिः) अग्निका प्रकाश (वातस्य प्रवां उपवां अनु वाति) वायुके अनुसार आगे और पीछे चलता है ॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते
अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता
सा नो दधातु भद्रया
प्रिये धामनि धामनि ॥ ५२ ॥

(यस्यां भूम्यां कृष्णं अरुणं च) जिस भूमिमें काले और लाल वर्णवाले (संहिते अहोरात्रे अधि विहिते) मिले हुए अहोरात्र क्रमसे आते जाते रहते हैं। वह (पृथिवी भूमिः) विस्तृत भूमि (वर्षेण वृता आवृता) वर्षासे टिकी और घिरी होती है, (सा नः) वह हमें (भद्रया) कल्याणके साथ (प्रिये धामनि धामनि) हरएक प्रिय स्थानमें (दधातु) रखे ॥ ५२ ॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ५३

(द्यौः च पृथिवी च अन्तरिक्षं च) द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्ष (मे इदं व्यचः) मुझे यह विस्तार देवें तथा (अग्निः सूर्यः आपः विश्वे देवाः) अग्नि, सूर्य, जल और सब देव (मे मेधां संददुः) मुझे मेधा बुद्धि देवें ॥ ५३ ॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाड्
आशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥

(अहं सहमानः) मैं विजय करता हुआ (भूम्यां उत्तरः नाम) भूमिपर अपना नाम उंचा करता हूं। (अभी-षाट्) मैं चारों ओर विजयी होकर (विश्वा-षाट्) सब शत्रुओंका पराभव करता हू और (आशां आशां विषासहिः) प्रत्येक दिशामें विजयी हूं ॥ ५४ ॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद्
देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीं
अकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

हे (देवि) देवी पृथिवि! (यत् देवैः उक्ता) जब देवोंके कहनेके अनुसार (पुरस्तात् प्रथमाना) आगे दूर तक फैलती हुई (महित्वं व्यसर्पः) तूने अपनी महिमाको फैलाया, तब (त्वा सुभूतं आविशत्) तुझमें सुंदर विभूति आगई, (तदानीं चतस्रः प्रदिशः अकल्पयथाः) तब तूने चारों दिशाओंको सुयोग्य बनाया ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

(ये ग्रामाः) जो ग्राम, (यत् अरण्यं) जो अरण्य (भूम्यां अधि याः सभाः) भूमिपर जो सभाएं हैं, (ये संग्रामाः) जो युद्ध होते हैं तथा जो (समितयः) संमेलन होते हैं (तेषु ते चारु वदेम) उनमें तेरे विषयमें उत्तम भाषण हम करें ॥ ५६ ॥

तेरा हित हो ऐसे प्रस्ताव वहां हम करें।

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान्जनान्।
य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा
वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

(अश्वः इव रजः दुधुवे) घोडा जैसे धूलीको झाडता है, उसी प्रकार (यात् अजायत) यह पृथिवी जबसे उत्पन्न हुई है तबसे (पृथिवीं ये आक्षियन्) पृथिवीपर जो रहते थे, (तान् जनान् वि दुधुवे) उन जनोंको झाडती आयी है। यह पृथिवी (मन्द्रा अग्रे त्वरी) हर्षित

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होकर आगे बढनेवाली और (भुवनस्य गोपा) उत्पन्न होनेवालोंकी सुरक्षा करनेवाली और (वनस्पतीनां ओषधीनां गृभिः) वनस्पती और औषधियोंको पकड कर रखनेवाली है ॥ ५७ ॥

यद्वदामि मधुमत् तद् वदामि
यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमान्
अवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

(यद् वदामि) जो मैं कहता हूं (तत् मधुमत् वदामि) वह मीठाससे भरा कहता हूं। (यत् ईक्षे) जिन्हें मैं देखता हूं (तत् मा वनन्ति) वे लोग मुझे प्यार करते हैं । मैं (त्विषीमान् अस्मि) मैं तेजस्वी हूं तथा (जूतिमान्) स्फूर्तिसे युक्त हूं। (दोधतः अन्यान्) दूसरोंको कष्ट देनेवालोंको मैं (हन्मि) मारता हूं ॥ ५८ ॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

(शन्ति-वा) शान्तिसे युक्त (सुरभिः) सुगन्धसे युक्त (कीलालोध्नी) मधुर रसोंको प्राप्त करानेवाली (पयस्वती) दूधसे युक्त (पृथिवी भूमिः) विस्तृत भूमि (पयसा सह) दूधके साथ (मे अधि ब्रवीतु) मुझे आशीर्वाद देवे ॥ ५९ ॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मा
अन्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यत्
आविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥ ६० ॥

(यां रजसि अर्णवे प्रविष्टां) जिस अन्तरिक्षके समुद्रके अन्दर प्रविष्ट हुई भूमिको (विश्व-कर्मा हविषा अन्वैच्छत्) विश्वकर्माने हविसे ढूंढा और (यत् भुजिष्यं गुहा निहितं पात्रं) जो भोगोंसे भरा हुआ गुप्त स्थानमें रखा पात्र था (मातृमद्भ्यः भोगे आविः अभवत्) वह मातावालोंके भोगके रूपमें प्रकट हो गया ॥ ६० ॥

त्वमस्यावपनी जनानां
अदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आपूरयाति
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ६१ ॥

(त्वं जनानां आवपनी असि) तू लोगोंका आश्रय स्थान है (कामदुघा अदितिः पप्रथाना) कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुप्रसिद्ध अदिति है। (यत् ते ऊनं) जो तेरेमें न्यूनता हो (तत् ते ऋतस्य प्रथमजा प्रजापतिः) उसको तेरा सत्यका प्रथम बना प्रजापति (आपूरयाति) पूर्ण करे ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमानाः
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! (ते उपस्थाः प्रसूताः) तेरे ऊपर रहनेवाले तथा तेरेसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ (अस्मभ्यं अनमीवाः अयक्ष्माः) हमारे लिये रोगरहित और क्षयरहित (सन्तु) हों, (नः आयुः दीर्घं) हमारी आयु दीर्घ हो, (प्रतिबुध्यमानाः) जाग्रत रहते हुए (वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम) हम तेरे लिये बलि अर्पण करनेवाले हों ॥ ६२ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३

हे (मातः भूमे) मातृभूमे ! (मा भद्रया) मुझे कल्याणसे युक्त करके (सुप्रतिष्ठितं निधेहि) उत्तम प्रतिष्ठित बनाकर रख । हे (कवे) ज्ञानी पृथिवी ! (दिवा संविदाना) द्युलोकके साथ एक चित्त हुई तू (मा भूत्यां श्रियां धेहि) मुझे भाग्य और ऐश्वर्यमें रख ॥ ६३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६ अक्टूबर १९४४ को नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोसका महात्मा गांधीके नाम रंगून रेडियोसे प्रसारित भाषण

नेताजीकी वाणी

भाषण कर्ता–
नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस

अनुवादक–
श्री कृष्णदत्त, साहित्यरत्न

[गताङ्कसे आगे]

महात्माजी ! मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूं कि स्वाधीनताकी उपलब्धिके लिये सशस्त्राभियान आरम्भ करनेके लिये संकटाकीर्ण पथका अवलम्ब लेनेसे पूर्व मैंने इस प्रश्नके सभी सम्बद्ध पक्षोंको विचारानुयोगका विषय बनाया एवं उसके सभी पक्षोंका समीचीन विश्लेषण किया। इतने समय तक अपनी योग्यतानुसार अपनी जनताकी सेवा करनेके उपरान्त, मेरे लिये यह कल्पनीय भी नहीं है कि मैं देशद्रोही बननेकी इच्छा करने, यहांतक कि इस प्रकारकी अभिवाञ्छितके लिये मैं कोई लघुतम आधार भी प्रस्तुत नहीं कर सकता।

मेरे लिये यह सरलतम था कि मैं अपने देशमें रहकर उसी प्रकार जनसेवामें रत रहता जैसा मैं इतने दीर्घ समय तक रहा। एक भारतीय बन्दीगृहमें विश्वयुद्धके अन्त तक पडे रहना मेरे लिये सुगम था। इस प्रकार करनेसे व्यक्तिशः मुझे कोई हानि नहीं थीं। मै अपने देशवासियों द्वारा मेरे प्रति प्रदर्शित प्रेम एवं उदारताके लिये उनका आभारी हूं और इसीके आधारपर किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्ताको प्राप्त होनेवाला सर्वोच्च सम्मान मुझे प्राप्त हुआ। मैंने ऐसे व्यक्तियोंका अपना एक दल भी बना लिया था जिन्हें मुझ पर असाधारण स्नेह संपृक्त अडिग विश्वास था।

इस प्रकार एक आशंकामयी खोजमें विदेश जानेसे मैं अपने जीवनको आशंकाओंसे अभिद्रुत कर रहा था और इसका प्रभाव स्वयं मेरे भविष्य पर भी पडता। यहां तक कि मेरे दलके भी इन आशंकाओं द्वारा ग्रस्त होनेकी पूरी संभावना थी। यदि मुझे यह क्षीणतम आभास भी होता कि हम देशमें रहकर ही विदेशमें कार्य किये बिना स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं तो मैं इस संकटकी स्थितिमें भारत कभी नहीं छोडता। यदि मुझे अपने जीवन कालमें भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के ऐसे स्वर्णावसर मिलनेकी आशा होती जैसा कि अब युद्ध कालमें मिला है तो मैं घरसे कभी बाहर नहीं जाता। किन्तु मुझे दो बातोंका पूरा विश्वास था। प्रथम तो यह कि ऐसा स्वर्णावसर अगले सौ वर्षोंमें नहीं आयेगा और दूसरे यह कि विदेशसे सहायता लिये बिना अपने देशमें अपने ही प्रयत्नोंसे हम अपने उद्देश्यमें सफल नहीं होसकते। यही कारण था इस आशंकानदमें अवगाहन करनेके निश्चयका।

दैव मुझ पर कृपालु रहा है। अनेक प्रकारकी कठिनाइयां होने पर भी अभी तक मेरी सभी योजनायें सफल रही हैं। भारतसे बाहर आने पर मेरा पहला प्रयास अपने देशवासियोंको जहां कहीं वह मेरे सम्पर्कमें आये, संगठित करना था। मुझे यह कहते हुये प्रसन्नता है कि मैंने उन्हें सर्वत्र पूर्णतः जागरूक पाया। इसके पश्चात् मैंने हमारे शत्रुसे युद्ध रत राज्योंका भारत सम्बन्धी दृष्टिकोण जाननेके लिये उनसे सम्पर्क स्थापित किया। मैं यह देखकर आश्वस्त हुआ कि वर्षोंके अनवरत ब्रिटिश प्रचारके एकदम विपरीत ये राष्ट्र रूपेण भारतीय स्वतन्त्रताके मित्र हैं। मैंने यह भी पता लगाया कि वह हमें अभीष्ट सहायता अपने सामर्थ्यानुसार देनेको उद्यत हैं।

मैं उस प्रचारसे भी अनवगत नहीं हूं जो मेरे विरुद्ध हमारे शत्रु द्वारा किया जा रहा है। किन्तु मुझे विश्वास है कि मेरे देशवासी जो मुझे भली भांति जानते हैं इससे प्रभावित नहीं होंगे। जो व्यक्ति स्वदेशाभिमान एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्मानका पोषक जीवन पर्यन्त रहा हो और इसके निमित्त जिसने पर्याप्त कष्ट उठाये हों, वह कदापि इस प्रश्नपर किसी अन्य विदेशी सत्ताके समक्ष नतमस्तक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त मुझे व्यक्तिशः इन विदेशी सत्ताओंसे कोई काम प्राप्त नहीं करना है। एक भारतीयके लिये अपने देशमें प्राप्य सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करनेके उपरान्त मेरे लिये विदेशी सत्तासे प्राप्त करने योग्य क्या रह जाता है। केवल वही व्यक्ति उनके हाथोंमें क्षुद्रोपकरण बन सकता है और उनका संकेतानुगामी हो सकता है जो आत्म सम्मानकी भावनासे शून्य हो और जिसे अपने लिये दूसरोंको प्रभावित करनेके लिये सुदृढ स्थितिका निर्माण अभिप्रेत हो।

मेरा प्रबलतम शत्रु भी मेरे विषयमें यह कहनेका दुस्साहस नहीं कर सकता कि मैं राष्ट्रके सम्मान और प्रतिष्ठाको विदेशियोंके हाथ बेच सकता हूं। इसी प्रकार मेरा प्रबलतम शत्रु मेरे प्रति अपने विषैले अधिक्षेपको भी इस असत्य भाषणके द्वारा प्रकट नहीं कर सकता कि मैं अपने देशमें एक तिरस्कृत अकिंचनकी स्थितिमें था और स्वदेशमें प्रतिष्ठाकी स्थापनार्थ मुझे विदेशी सहायताकी अपेक्षा थी। देशको छोडते समय मुझे अपना सभी कुछ, यहांतक कि अपने जीवनको भी आपदग्रस्त करना पडा। किन्तु इन सभी आशंकाओंको मैंने स्वयं निमन्त्रण दिया क्योंकि भारतीय स्वाधीनताके स्वप्नको साकार करनेके लिये अन्य कोई विकल्प मेरे समक्ष नहीं था। अब मेरे लिये एक ही प्रश्न शेष है जो उत्तरकी अपेक्षा रखता है, वह है क्या धुरी शक्तियोंके लिये मुझे किसी प्रपंच-पाशमें फांस लेना सम्भव है ?

ब्रिटिश क्षेत्रोंमें ही सर्वाधिक चतुर एवं वंचक राजनीतिज्ञोंकी उपलब्धि होती है- मैं समझता हूं कि मेरे इस विश्वासको आज विश्वजनीन मान्यता प्राप्त है। जिसने जीवन पर्यन्त ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके विरुद्ध कार्य एवं उनसे संघर्ष किया है वह संसारके किसी अन्य राजनीतिज्ञकी प्रवंचनाओंका भाजन नहीं बन सकता। यदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ किसी प्रलोभनसे मेरी चेतनाको विप्रदुष्ट कर मुझे अभ्युपापित करनेमें असमर्थ रहे हैं तो संसारके किसी भी व्यक्तिमें यह शक्ति नहीं कि वह अपने इस घृणित मनोरथमें सफल हो सके। यदि अंग्रेजों द्वारा मेरे लिये नियोजित सुदीर्घ कारावास, अनवरत उत्पीडन जिसमें शारीरिक प्रहार भी सम्मिलित है, इनके संयुक्त दल-दलमें पोषित हो मेरे स्वदेश प्रेमोन्मुखी साहसका कमल विकृत नहीं हो सका तो संसारकी कोई शक्ति उसकी सुविकचताको अभिम्लान नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त यह भी आपके ज्ञानातीत नहीं है कि मैं अन्तर्राष्ट्रीय घटना-चक्रका उत्सुक विद्यार्थी रहा हूं। युद्ध आरम्भन होनेसे पूर्व मैंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंसे सम्पर्क स्थापित किया।

अतः मैं कोई नौसिखिया नहीं हूं जिसे कोई चतुर और कपटी अपने धूर्ततापूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिका उपकरण बना सके। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि धुरी राष्ट्रोंके हमारे आन्दोलन सम्बन्धी दृष्टिकोणके प्रति कोई सम्मति निर्धारणसे पूर्व मैंने राष्ट्रोंके महत्त्वपूर्ण नेताओंसे निकट सम्पर्क स्थापित किया। परिणाम स्वरूप, मैं बलपूर्वक निवेदन करना चाहूंगा कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिके सम्बन्धमें मेरे मूल्यांकनकी यथार्थता पर मेरे देशवासियोंको पूर्ण विश्वास है। विदेशोंमें रहनेवाले भारतीय इसकी साक्षी देंगे कि भारत छोडनेके उपरान्त मैंने कोई कार्य ऐसा नहीं किया जिससे इस बातका क्षीणतम आभास मिले कि विदेशियोंके हाथ मैं राष्ट्रीय सम्मान बेच रहा हूं। मेरी सभी चेष्टायें भारतके हित एवं संसारकी दृष्टिमें उसके सम्मान वृद्धि एवं उसकी स्वतंत्रताकी दिशामें ही रही हैं।

महात्माजी ! जबसे पूर्वी एशियामें युद्ध आरम्भ हुआ है हमारे शत्रुकी ओरसे जापानके विरुद्ध अनर्थक प्रचार किया जा रहा है। अतः इस बातके संदर्भमें कि सम्प्रति मैं जापानी शासन, सेना एवं जनतासे निकटतम सम्पर्क स्थापित कर कार्यरत हूं, उसी देशके विषयमें कुछ निवेदन करूंगा।

समय था जब जापानकी हमारे शत्रुसे मित्रता थी। जब तक इस संधिकी वैधता रही मैं जापानमें नहीं आया। दोनों देशोंके मध्य जब तक सामान्य दौत्य सम्बन्ध रहे मैं जापानमें नहीं आया। मेरा आगमन स्वेच्छासे जापानमें उसी समय हुआ जब उसने अपने इतिहासमें ब्रिटेन और अमरीकाके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पग उठाया।

अपने अन्य कई देशवासियोंके समान मैंने भी जापान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरोधी प्रचुर प्रचार सामग्रीका वर्षों तक अध्ययन किया है। अपने अनेक देशवासियोंकी भांति मैं भी यह नहीं समझ पाया कि जापानने १९३७ में चीनसे युद्ध क्यों किया। १९३७ और ३८ में अनेक देशवासियोंकी भांति मेरी सहानुभूति भी चुंगकिंग (चीन) के साथ थी। आपको यह स्मरण होगा कि दिसम्बर १९३८ में कांग्रेस अध्यक्षके नाते मैंने एक चिकित्सा दल चुंगकिंग भेजा था। किन्तु जापानमें स्वयं जाकर मैंने जो देखा और जिसे बहुतसे भारतीय हृदयङ्गम नहीं कर पाये, वह है एशियाई देशोंके प्रति विशेषतः और विश्वके प्रति सामान्यतः जापानियोंका आधुनिक दृष्टिकोण जिसमें उस समयसे अब आमूल परिवर्तन होचुका है। यह परिवर्तन मात्र जापानी शासन तक ही परिमित नहीं, प्रत्युत् जापानी जनता भी इससे प्रभावित है। जापानी जनताकी आत्मा आज एक नवीन एशियाई चेतना से अवभासित है। इसीके द्वारा हम फिलिपाइन्स, बर्मा, भारत एवं चीनके प्रति उसकी नई नीतिको भलीभांति समझ सकते हैं। जापानमें अपने प्रवासान्तर्गत मैंने जापानी नेताओंसे निकट सम्पर्क स्थापित कर यह भलीभांति देख लिया है और इससे मुझे पूर्ण सन्तोष है कि यह नीति परिवर्तन एक प्रपंच मात्र न होकर सहृदयतासे प्रेरित है।

इतिहासमें यह पहला अवसर नहीं है जब कोई राष्ट्र सर्वथा नवीन चेतनासे अभिभूत हुआ है। इतिहासमें इसके दो उदाहरण हमें मिल चुके हैं। फ्रेंच क्रान्तिके समय फ्रांसमें और दूसरा बालशेविक क्रान्तिके समय रूसमें। जापानकी अपनी नवम्बर १९४३ की दूसरी यात्राके उपरान्तमें फिलिपाइन्स गया और वहांके नेताओंसे विचार विमर्श कर मैंने स्वयं स्थितिका अध्ययन किया। स्वतन्त्रताके उपरान्त बर्मामें भी पर्याप्त समय तक रह कर मैं वहांकी स्थितिसे अवगत हो चुका हूं।

यह जाननेके लिये कि जापानकी नई नीति कहां तक वास्तविकता पर आश्रत है, मैं चीन गया। चीन एवं जापानके नवीनतम समझौतेसे चीनी लोगोंको वह सब मिल गया है जो वह चाहते थे। पारस्परिक शत्रुताकी समाप्ति पर जापानने चीनसे अपनी सेनायें हटाना भी स्वीकार कर लिया। फिर चीन किस लिये संघर्ष कर रहा है? क्या कोई विश्वास कर सकता है कि ब्रिटेन और अमरीका चुंगकिंगचीनका विशुद्ध सैद्धान्तिक आधार पर समर्थन कर रहे हैं? क्या जापानसे युद्धमें सहायता देनेका वह चीनसे भारी पारिश्रमिक नहीं लेंगे? मैं स्पष्टतः यह देख रहा हूं कि चीनको जापानसे अतीत कालीन घृणा और शत्रुताके कारण ब्रिटेन और अमरीकाके पास गिरवी रखा जा रहा है। जापानसे संघर्षके लिये चीन द्वारा ब्रिटिश और अमरीकी सहायता प्राप्त करनेका औचित्य उस समय तक समझमें आ सकता था जब तक जापानने उसके प्रति अपनी वर्तमान नीति पर आचरण आरम्भ नहीं किया था। किन्तु अब जब चीनी जापानी सम्बन्ध क्षेत्रमें सर्वथा नवीन अध्यायकी अभिव्यक्ति हुई है, चीनके लिये जापानके विरुद्ध निरुद्देश्य संघर्ष निर्बाध रूपेण चलानेके लिये किंचित् भी युक्ति संगत आधार नहीं है। यह चीनी जनताके और एशियाके हितमें नहीं है।

अप्रैल १९४२ में आपने स्वतन्त्र होनेकी स्थितिमें जापान और चीनको निकट लानेके लिये यत्नशील होनेकी बात कही थी। आपका वह कथन असंशयेन आपकी असाधारण बुद्धिमत्ताका द्योतन करता था। मूलतः यह भारतीय दासता ही है जो चीनमें अव्यवस्थाके लिये उत्तरदायी है। भारत पर ब्रिटिश आधिपत्यके कारण ही अंग्रेज-अमरीकी कूटनीतिज्ञ चुंगकिंगको इस भ्रममें रख सके कि जापानके विरुद्ध उसके संघर्षमें उसे उनकी ओरसे अपेक्षित सहायता पर्याप्त मात्रामें मिलेगी। आपका यह विचार पूर्णतः उचित ही है महात्माजी, कि स्वतंत्र भारत चीन और जापानके मध्य शान्ति स्थापनके लिये प्रयत्न शील होगा। मैं तो यहां तक कहूंगा कि दोनों देशोंमें सौहार्द स्थापन स्वयंमेव ही भारतीय स्वाधीनताका अनुवर्ती होगा, चुंगकिंगको उसकी भूल बतानेके पश्चात्।

जबसे मैंने पूर्वी एशियामें पदार्पण किया है और चीनका भ्रमण किया है, मैं चीनकी समस्याका गम्भीर अध्ययन करनेमें सफल हुआ हूं। मेरा यह अनुभव है कि चीनमें अधिनायक-वादी शासन है। व्यक्तिशः मुझे इस शासन व्यवस्था पर कोई आपत्ति नहीं, यदि यह किसी सदुद्देश्यके निमित्त हो। किन्तु चीनका अधिनायकवाद स्पष्टतः अमरीकी प्रभावान्तर्गत है। दुर्भाग्यसे आंग्ल-अमरीकी गुट जापानको यह अनुचित विश्वास दिलानेमें सफल होगया है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि यदि किसी प्रकार जापान पराजित हो जावे तो चीन एशियामें प्रभावशाली सत्ता हो जायेगी । वस्तुस्थिति यह है कि यदि जापान किसी प्रकार पराजित होगया तो चीन सीधे अमरीकी प्रभाव और नियंत्रणमें चला जायेगा । यह चीन और एशिया दोनों ही के दुर्भाग्यकी बात होगी ।

एशियाकी प्रभावशालिनी सत्ता बननेकी दुराशाको लेकर ही चुंगकिंगके शासक वर्गने व्हाइट हाउस और व्हाइटहाल से अपवित्र गठबन्धन किया है । मुझे उन कार्यवाहियोंका ज्ञान है जो चुंगकिंगका शासन भारतीयोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिये भारतमें ही कर रहा है । किन्तु मैं सहृदयता पूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि जापान द्वारा चीनके प्रति नई नीति अपनानेके आलोकमें वह चुंगकिंग भारतीय जनताकी सहानुभूतिका अधिकारी नहीं है जिसने वाल स्ट्रीट और लाम्बार्ड स्ट्रीटके पास अपनेको गिरवी रख दिया है ।

महात्माजी ! आप इस विषयमें सबसे अधिक जानते हैं कि भारतके लोग मात्र मौखिक वचनोंके प्रति कितने सशंकित रहते हैं । यदि जापानियोंकी नीति सम्बन्धी घोषणा अव्यावहारिक आश्वासन मात्र ही होती तो मैं कदापि उसके प्रति आकृष्ट नहीं होता । किन्तु इस युद्धके ठीक मध्यमें जापानने जो क्रान्तिकारी परिवर्तन फिलिपाइन्स, बर्मा तथा राष्ट्रवादी चीनमें किये हैं, उन्हें मैंने स्वयं अपनी आंखोंसे देखा है । अपने वचनोंका मूल्य जापान भली भांति समझता है और उसके कार्य घोषणाओंके अनुरूप ही होते हैं ।

मैं यह भी कह सकता हूं कि भारतके प्रति जापानने अपनी सहृदयताका अपने कार्योंसे उचित अनुमोदन किया है । समय था जब भारतके प्रति जापानकी ' स्वार्थानुप्रेरित आकांक्षाओं ' के प्रति लोग सशंकित थे । यदि ऐसा ही था तो जापानने आजाद हिन्दकी अस्थायी सरकारको क्यों मान्यता प्रदान की ? उसमें अंडेमान और निकोबार द्वीपोंको हमारी अस्थायी सरकारके शासनमें क्यों दिया । अब अंडेमान और निकोबारका भारतीय सुव्यायुक्त क्यों है जो इस समय पोर्ट बूलेअरमें स्थित है ? इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जापानने पूर्वी एशियामें भारतीय जनताको उसके स्वातन्त्र्य संग्राममें बिना पूर्वाग्रहके सहायता क्यों दी ? समस्त पूर्वी एशियामें ऐसे भारतीय हैं जिन्हें जापानको निकटसे देखनेका अवसर मिला है । यदि उन्हें जापानके मनोभावोंके विषयमें कोई संदेह होता तो पूर्वी एशियामें रहनेवाले तीस लाख भारतीय जापानियोंसे निकटतम सहयोगकी नीति क्यों अपनाते ? आप कुछ व्यक्तियोंको छलसे अथवा बलसे फुसला कर अपना मन चाहा काम करवा सकते हैं; किन्तु समस्त पूर्वी एशियामें फैले हुये तीस लाख भारतीयोंको किसी प्रपंचसे पराभूत करना अचिन्तनीय है ।

यदि यह भारतीय अपना यत्न किये बिना अधिकतम उत्सर्ग किये बिना मात्र जापानी सहायता पर ही निर्भर रहते तो वह भयंकर भूल करनेके अपराधी होते । किन्तु, इसके विपरीत मैं यह कहते हुये अतीव हर्षका अनुभव कर रहा हूं कि मेरे देशवासी जिस मनोयोगसे मानवीय संगठनमें प्रवृत्त हैं, धन एवं सामग्री जुटानेमें उनके द्वारा प्रदर्शित उत्साह भी निश्चय ही श्लाघास्पद है । मुझे देशमें रह कर धन संचय एवं राष्ट्र सेवाके लिये मनुष्योंकी सेवायें प्राप्त करनेका बीस वर्षीय अनुभव है । इस अनुभवके आलोकमें मैं उस त्यागकी उपादेयता एवं मूल्यका उचित मूल्यांकन करनेकी स्थितिमें हूं, जो पूर्वी एशिया स्थित मेरे देशवासी सम्प्रति कर रहे है । उनकी उद्यमशीलता असंशोधन भव्य है । उनके यत्नोंकी इसी आदर्श भव्यताके प्रति पूर्ण विश्वस्त होकर मैं जापानसे शस्त्रास्त्र आदि ऐसे युद्धोपकरण जिनका निर्माण हम स्वयं नहीं कर सकते–प्राप्त करनेमें कोई हानि नहीं देखता ।

महात्माजी, जब मैं उस अस्थायी सरकारके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहूंगा जिसकी हमने यहां स्थापना की है । आजाद हिन्दकी इस अस्थायी सरकारको जापान एवं जर्मनके अतिरिक्त सात अन्य मित्र राष्ट्रोंने भी मान्यता प्रदानकी है । इससे भारतीयोंको संसारकी दृष्टिमें एक नया स्तर और नया सम्मान मिला है । इस सरकारका प्रधानोद्देश्य ब्रिटिश राज्यसे सशस्त्र संग्रामके माध्यमसे भारतको मुक्त कराना है । यदि एक बार भारत भूमिसे हमारे शत्रुओंका निष्कासन हो जाये एवं वहां सुव्यवस्था हो तो अस्थायी सरकारकी इतिकर्तव्यता हो जाती है । तदनन्तर यह भारतीय जनताका कार्य होगा कि वह अपने अनुकूल शासनका चयन करे एवं यह निर्णय करे कि शासन सूत्र किसे सौंपा जाये ।

मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूं महात्माजी, कि मैं एवं मेरे अन्य सहयोगी अपनेको भारतीय जनताका सेवक समझते हैं । हम अपने त्याग एवं सेवाओंका एक ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

प्रतिदान चाहते हैं और वह है हमारी मातृभूमिकी स्वतंत्रता। हममेंसे अनेक ऐसे हैं जो भारतके स्वतन्त्र होते ही सेवा निवृत्त होकर राजनैतिक क्षेत्रका परित्याग कर देंगे। शेष व्यक्ति भी स्वतन्त्र भारतमें किसी भी वृत्तिका जिसके वह योग्य माने जायें वरण सहर्ष करेंगे, चाहे वह कितनी ही क्षुद्र हो। हम आज जिस भावनासे अनुप्राणित हैं वह यह है—स्वतन्त्र भारतमें एक भंगीकी वृत्ति भी ब्रिटिश शासनान्तर्गत उच्चतम पदसे अधिक सम्मानपूर्ण है। हम सब यह जानते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त होनेके अनन्तर हमारे देशमें लाखों ऐसे स्त्री पुरुष उपलब्ध होंगे जिनके सूक्ष्म करोंमें भारतके भाग्य निर्माणका कार्य निस्संकोच सौंपा जा सकता है।

भारतसे अंतिम ब्रिटिशके निष्कासन पर्यन्त जापानसे ली जानेवाली सहायताका परिमाण भारतमें रहनेवाले व्यक्तियोंसे प्राप्त होनेवाले सहयोग पर निर्भर है। हम पर सहायता थोपनेका जापानका विचार नहीं हैं। जापानको इसमें प्रसन्नता ही होगी यदि भारतीय ही अपने प्रयत्नोंसे स्वराज्य प्राप्त करें। अपने शत्रुको अन्य शक्तियोंसे सहायता प्राप्त करते देखकर हमने भी जापानसे सहायता ली है, ब्रिटेन और अमरीकाके विरुद्ध युद्धकी घोषणा करनेके उपरान्त। यदि देशवासियोंके आन्तरिक प्रयत्नोंसे अथवा ब्रिटिश सरकार द्वारा आपका 'भारत छोडो' प्रस्ताव स्वीकार करनेके परिणाम स्वरूप हम स्वतन्त्र हो जायें तो किसीको हमसे अधिक प्रसन्नता नहीं होगी। किन्तु हमारे समस्त क्रिया कलाप इस सुनिश्चित धारणा पर आश्रित हैं कि इन दोनोंमेंसे किसीकी सम्भावना नहीं है और सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य है।

महात्माजी! अब केवल एक और बात शेष है जिसका समाप्त करनेसे पूर्व मुझे उल्लेख करना है और वह है इस युद्धका परिणाम। मैं उस प्रचारसे परिचित हूं जो हमारे विरोधी अपनी विजयकी पूर्ण सम्भावना बताते हुये हमारे विरुद्ध कर रहे हैं। किन्तु मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास है कि हमारे देशवासी उनके पाशमें नहीं फंसेंगे और उनकी विजयकी भ्रान्त धारणाके वशीभूत हो उनसे कोई समझौता नहीं करेंगे। जाग्रत नेत्रोंसे युद्धकालमें विश्वके अनेक भागोंके पर्यटनके उपरान्त और भारत बर्मा सीमा पर शत्रुकी आन्तरिक दुर्बलताको देखकर और हमारे उपकरण, शक्ति और साधनोंको ध्यानान्तर्गत कर मैं हमारी अन्तिम विजयमें पूरा विश्वास रखता हूं।

शत्रुकी शक्तिको जानबूझ कर अल्प समझनेवाला मैं कोई मूर्ख नहीं हूं। भली भांति अभिज्ञ हूं मैं उस सुदीर्घ एवं कठोर संघर्षसे जिसका संक्रमण हमें लक्ष्य प्राप्ति तक करना है। ब्रिटिश लोग निश्चय ही भारत भूमि पर अपने आधिपत्यकी रक्षार्थ जी तोड कर युद्ध करेंगे। किन्तु संघर्ष चाहे कितना कठोर और कष्टप्रद हो परिणाम केवल एक ही होसकता है—हमारी अंतिम विजय।

भारतका अंतिम स्वाधीनता संग्राम आरम्भ होचुका है। आजाद हिन्द सेना भारत भूमि पर वीरतासे लडती हुई धीरे-धीरे विश्वास पूर्वक बढ रही है। यह सशस्त्र संघर्ष उस समय तक रहेगा जब तक अंतिम ब्रिटिश देशसे नहीं जाता और तब तक वायसराय भवन पर हमारा तिरंगा झंडा नहीं लहराता। राष्ट्रपिता! भारतीय स्वाधीनताके इस धर्मयुद्धके लिये हम आपके आशीर्वाद और शुभकामनाओंकी याचना करते हैं। ● ● ●

संस्कृत-पाठ-माला

[२४ भाग]

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन करनेसे एक वर्षमें आप स्वयं रामायण-महाभारत समझ सकते हैं।

२४ भागोंका मूल्य	१२)	१।)
प्रत्येक भागका मूल्य	॥)	=)

संस्कृत पुस्तकें

१ कुमुदिनीचंद्र	४)	॥=)
२ सूक्ति-सुधा	।–)	–)
३ सुबोध-संस्कृत-ज्ञानम्	१।)	।)
४ सुबोध संस्कृत व्याकरण		
भाग १ और २, प्रत्येक भाग	॥)	=)
५ साहित्य सुधा (पं. मेधाव्रतजी) भा. १	१।)	।)

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, पोस्ट– 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. सूरत]

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४– अग्निके तीन भ्राता

[डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, हिंदुविश्वविद्यालय काशी]

ऋग्वेदमें महर्षि दीर्घतमाका एक प्रसिद्ध सूक्त है, जिसे 'अस्य वामीय' सूक्त कहते हैं। उसके पहले मंत्रमें अग्निके तीन भ्राताओंका उल्लेख है—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य
अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥ ऋ. १।१६४।१

इसका अनुवाद प्रायः इस प्रकार किया जाता है कि 'इस सुन्दर बूढे होताका मंझला भाई बहुत खानेवाला है। तीसरा भाई वह है कि जिसके पीठपर घी है। मैं यहां विश्पतिको देखता हूं, जिसके कि सातपुत्र हैं'। 'ग्रिफिथ' ने अपने अंग्रेजी अनुवादमें इस मंत्रका अनुवाद करते हुए एक टिप्पणीमें लिखा है– कि पहला भाई आदित्य है, दूसरा भाई विद्युत् है, जो अग्निका ही रूप है और तीसरा गार्हपत्य अग्नि है, जिसे प्रत्येक गृहपति घृताहुतिसे प्रदीप्त करता है। सप्तपुत्र यज्ञके सात होता या ऋत्विज हैं।

सायणके अनुसार इस मंत्रका अर्थ इस प्रकार है--

'अत्र द्वितीयपादे तच्छब्दश्रुतेः प्रथमपादे प्रतिविशेषणं योग्यक्रियार्थसंबद्धो यच्छब्दोऽध्याहार्यः। योऽयं दिवि द्योतते तस्य (अस्य वामस्य) वननीयस्य संभजनीयस्य आरोग्यार्थिभिः सर्वैः सेवनीयस्य (पलितस्य) पालयितुः प्रकाशवृष्ट्यादिप्रदानेन पालकस्य तथा योऽयं दिवि द्योतते (तस्य) अस्य (होतुः) ह्यातव्यस्य आह्वानार्हस्यादित्यस्य (मध्यमः) मध्यमस्थानः। मध्ये भवो वायुरुच्यते। आदित्याग्नी अपेक्ष्य अस्य मध्यमत्वम्। स च (अश्नः) सर्वत्र व्याप्तः। न हि वायुरहितः कश्चित्प्रदेशोऽस्ति। तादृशः (भ्राता अस्ति) भ्रातृस्थानीयो भवति। यथा लोके भ्राता पितृधनस्य भागं हरति तद्वत्। मध्यस्थानं अन्तरिक्षलोकं हरतीति वा। वृष्ट्यर्थं रश्मिभिराहृतानां भौमानां रसानां हरणाद्वा भ्रातेत्युच्यते। पित्र्येण धनेन स्वार्जितेन वा भर्तव्यः भवतीति भ्राता। मध्यमो वायुरपि वृष्ट्यर्थं रसैः भक्तव्यो भवति। किंच (घृतपृष्ठः) घृतमाहुतिलक्षणं पृष्ठे यस्य तादृशः (भ्राता) तस्य (तृतीयः अस्ति) भवति। त्रयाणां पूरणः तृतीयः। उक्तोभयापेक्षया तृतीयत्वम्। भ्रातृत्वं प्रतिपादितप्रकारेणात्राऽपि द्रष्टव्यम्। रात्रौ सवितुस्तेजोभागस्य हरणात् दिवा स्वकीयतेजसो भागस्य तदर्थमेव भक्तव्यत्वात् वा भ्रातृत्वम्। (अत्र) एषु भ्रातृषु मध्ये पुरोदेशे वा (विश्पतिं) विशां प्रजानां पालयितारं (सप्तपुत्रं) सर्पणरश्मिपुत्रोपेतम्। ऐतिहासिकपक्षे 'अदितिः पुत्रकामा' इति प्रस्तुते मित्रावरुणादिषु अदितिपुत्रेषु अस्य आदित्यस्य सप्तमपुत्रत्वम्। ईदृशं महानुभावमादित्यं (अपश्यम्) अद्राक्षं भावनया आत्मत्वेन साक्षात्करोमीत्यर्थः। 'तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं' इति श्रुतिः। एवं वा। अस्य वामस्य विश्वस्योद्गरितुः स्रष्टुरित्यर्थः। पलितस्य पालयितुः स्वसृष्टजगत्पालनशीलस्य होतुरादातुः स्वस्मिन् संहर्तुरित्यर्थः। परमेश्वरस्य सृष्ट्यादिकर्तृत्वं श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु प्रसिद्धम्। तस्य तादृशस्य परमेश्वरस्य भ्राता तद्भागहारी तदंशभूतः सूत्रात्मा मध्यमः सर्वत्र मध्ये वर्त्तमानोऽस्ति जगद्धारकत्वेन वर्तते। स च अश्नः व्यापनशीलः। 'वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि। (बृ. उ. ३।७।२) इति श्रुतेः। वक्ष्यमाणविराडपेक्षया वा मध्यमत्वम्। किञ्चास्य परमेश्वरस्य तृतीयो घृतपृष्ठः। घृतमित्युदकनाम। तेन तत्कार्यं शरीरमुच्यते। तदेव पृष्ठं स्पर्शकं वा यस्य स तादृशः। 'पृष्ठं स्पृशतेः' (निरु. ४।३) इति निरुक्तम्। यद्वा प्रदीप्तपृष्ठः। पृष्ठः शब्दः कृत्स्न-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरीरोपलक्षकः। प्रकाशितशरीराभिमानीत्यर्थः। न त्वयं सूक्ष्मशरीराभिमानिसूत्रात्मवत् स्पर्शनाविषयो भवति। अत्र एषु मध्ये विश्पतिं विशां प्रजानां पतिं। उपलक्षणमेतत्। सर्वस्य पतिमित्यर्थः। 'सर्वस्य पतिः सर्वस्येशानः' इति श्रुतेः। सप्तपुत्रं सप्तलोकाः पुत्राः यस्य तादृशम्। स्वमायया सृष्टसर्वलोकमित्यर्थः। अपश्यं पश्येयं साक्षात्करोमीत्यर्थः। अयमर्थः। स्वाधीनमायो जगत्कारणभूतः परमेश्वर एकः। तत उत्पन्नौ स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानिनौ द्वौ विराट्सूत्रात्मानौ। तेषु मध्ये द्वयोः साक्षात्कारेण मोक्षाभावात् सृष्ट्यादिकारणं परमेश्वरं ज्ञेयत्वेन प्रसिद्धं श्रवणमननादिसाधनेन साक्षात्करोमीत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि अध्यात्मपरतया योजयितुं शक्यम्।,

इसप्रकार सायणके अनुसार 'वाम पलित होता' आदित्य है। 'वाम' का अर्थ सुन्दर या सेवनीय और 'पलित' का अर्थ पालक किया गया है। मध्यमस्थानीय भ्राता वायु है जो सर्वत्र व्याप्त है। वायु आदित्यकी शक्तिमें भाग प्राप्त करनेके कारण भ्राता कहा जाता है, अथवा मध्यमस्थान या अन्तरिक्ष लोकमें रहनेके कारण वायु मध्यम भ्राता कहा जाता है, अथवा वृष्टिके लिए रश्मियों द्वारा जलका आहरण करनेके कारण भी वायु भ्राता कहा जाता है। पितासे अर्जित या स्वयं उपार्जित धनसे जिसका भरण होता है, वह भ्राता कहलाता है। वृष्टिके लिए पृथ्वी स्थानीय रस मध्यस्थानीय वायुको भजते हैं। उसका तीसरा भाई घृतपृष्ठ है, अर्थात् घृतकी आहुति उसके पृष्ठ भाग पर है। वह रात्रिमें सविताके तेजांशको धारण करता है और दिनमें उसे सविताको ही अर्पित कर देता है।

इस कारण 'अग्नि' को आदित्यका भ्राता भाई कहा है। इन तीन भाइयोंके बीचमें प्रजाओंके पालन करनेवाले तथा सातरश्मियां जिसके सात पुत्र हैं ऐसे आदित्यका मैंने साक्षात्कार किया है। ऐतिहासिकोंके मतमें देवमाता अदितिसे उत्पन्न मित्र, वरुण आदि सात आदित्य ही सात पुत्र हैं। इस प्रकार महान् अनुभाववाले आदित्य देवताका मैंने अपनी आत्माके रूपमें अनुभव किया है। जैसे कि श्रुतिमें कहा है। अथवा वामका अर्थ है सृष्टिकी उत्पत्ति या उद्गिरण करनेवाला। पलितका अर्थ जगत्की स्थिति या पालन करनेवाला। देवता और होता का अर्थ है सृष्टिका संहारक देव। ये तीन शब्द विश्वका निर्माण, पालन व संहार करनेवाले परमेश्वरकी ओर संकेत करते हैं।

जैसा कि श्रुतिस्मृति तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। ऐसे परमेश्वरका भ्राता या उसके अंशको प्राप्त करनेवाला जीव रूप सूत्रात्मा मध्यस्थानीय वायु है। जो परमेश्वर और जगत् के बीचमें है। वह व्यापनशील है। जैसे कहा भी है– 'हे गौतम! वायु रूपी सूत्रके आधारसे यह लोक, परलोक और सब प्राणी ठहरे हुए हैं। अथवा विराट्की तुलनामें यह जीव मध्यम है। परमेश्वरका तीसरा भाई घृतपृष्ठ है। घृत पानीको कहते हैं। उनसे शरीरका बोध होता है, वह शरीर ही जिसका पृष्ठ या जिसका स्पर्श करनेवाला है वह परमेश्वर घृतपृष्ठ है। अथवा पृष्ठका अर्थ शरीर और घृतका अर्थ प्रकाश है। वह ईश्वर प्रत्यक्ष शरीरका अभिमानी देवता है। सूक्ष्मशरीरका अभिमानी देवता सूत्रात्मा है। विश्पतिका अर्थ प्रजापति है। वही 'सर्वपति' या सबका ईश्वर है। सप्तलोक ही प्रजापतिके सप्तपुत्र हैं। अपनी मायाके द्वारा वह समस्त लोकसृष्टिके रूपमें विद्यमान है।

'अपश्यं' का अर्थ साक्षात्करना है। इस मंत्रका तात्पर्य यह है कि मायाका अधिपति विश्वका कारण परमेश्वर एक है, उससे ही स्थूल विश्व या शरीरका अभिमानी विराट् और सूक्ष्म विश्व या शरीरका अभिमानी सूत्रात्मा उत्पन्न होते हैं। इन तीनोंमें केवल विराट् या सूत्रात्माके साक्षात्कारसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, अतः तीसरा परमेश्वर ही साक्षात्कारके योग्य है। इसी अध्यात्मकी दृष्टिसे इस सूक्तके अन्य मंत्रोंका अर्थ भी समझना चाहिए।

सायणने इस मंत्रका दो प्रकारसे अर्थ किया है, एक आदित्य, वायु और अग्नि नामक देवताओंको भ्राता मानकर आधिदैवत अर्थ है। दूसरा अर्थ आध्यात्मिक है। वैदिक यज्ञविद्या एवं लोकविद्याके 'अनुसार विराट्का भौतिक जगत् और सूक्ष्म सूत्रात्मा प्राणका सूक्ष्म जगत् ये दोनों ईश्वरकी मायासे आविर्भूत होते हैं। इनसे मोक्ष प्राप्त करनेका उपाय केवल ईश्वरका साक्षात्कार ही है। सायणका यह अर्थ भी ब्रह्मवाद पर आधारित है।

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस मंत्रका अर्थ यास्काचार्यने भी निरुक्तमें किया है, जिसका अन्तर्भाव सायणके पहले अर्थमें होजाता है—

अस्य वामस्य वननीयस्य पलितस्य पालयितुर्होतुः ह्वातव्यस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नो भ्राता भरतेर्हरति कर्मणो भरतेर्भागं भर्तव्यो भवतीति वा। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो यस्यायमग्निस्तत्रापश्यं सर्वस्य पातारं वा पालयितारं वा विश्पतिं सप्त पुत्रं सप्तम पुत्रं सर्पणपुत्रमिति वा सप्त सृप्ता संख्या सप्त आदित्यरश्मयः इति वदन्ति। (निरु. ४।२६)

दुर्गाचार्यने अपने निरुक्त भाष्यमें यह माना है कि यास्क भी अग्नि, वायु और आदित्यको तीन भ्राता मानते हैं। श्री गेल्डनरने 'अस्य वामीयसूक्त' को 'ब्रह्मोद्य' कहा है। इसका आशय यह है कि इसके अधिकांश मंत्र पहेली या बुझौवलके रूपमें हैं और उनमें जानबूझकर रहस्यात्मक शैली और परिभाषाओंका प्रयोग किया है। बहुत अंशमें यह बात ठीक है। डॉ. कुन्हन राजाने इस सूक्तका एक संस्करण प्रकाशित किया है। उनका भी मत है कि यह सारा सूक्त ही प्रहेलिकाओंसे भरा हुआ है, जिनके अर्थ धुंधले पड गये हैं और जिनकी कुंजियां खो गई हैं। यद्यपि ऋषि दीर्घतमाके इस सूक्तके कथनकी शैली गंभीर है, फिर भी यह माननेका पर्याप्त कारण नहीं है, कि मंत्रोंके अर्थोंका उद्घाटन नहीं हो सकता या ऋषिने जानबूझकर मंत्रको क्लिष्ट बनाया है। वस्तुतः समस्त ऋग्वेद सृष्टिविद्यासंबन्धी अनेक विशिष्टविद्याओंका संग्रह है। उन्हीं विद्याओंका संकेतरूपमें या कुछ विशदरूपमें इस सूक्तमें उल्लेख पाया जाता है। उदाहरणके लिए प्रथम मंत्रमें 'अग्निके तीन भ्राताओंकी विद्या' है। पंचम मंत्रमें 'सप्त तन्तु विद्या' है। जिसका सम्बन्ध सूर्य, संवत्सर और यज्ञसे है। छठे मन्त्रमें 'अव्यय,' 'अज' एवं उस पर आश्रित छै रजोंकी विद्या है। सातवें, आठवें और नौवें मंत्रमें 'गोविद्या' एवं 'मातृविद्या' के अनेक सूत्र हैं।

मंत्र दसमें भी एक 'अविचाली ऊर्ध्वतत्व' की तथा उस पर आश्रित मातापिताओंके तीन युग्मोंकी विद्या है। मंत्र ११, १२, १३, १४ में 'चक्र विद्या' है, जिसे द्वादशार, पञ्चार और पंचार कहा गया है। १५ वें मंत्रमें 'सप्त साकंज' 'प्राण विद्या' और मंत्र १६ में 'स्त्री पुमान् विद्या' है। मंत्र १७, १८, १९ में 'परार्ध, अवरार्ध या परावर विद्या' का वर्णन है। मंत्र २०, २१, २२ में 'सुपर्ण विद्या' है। मंत्र २३, २४, २५ में 'त्रिसुपर्ण विद्या' अथवा 'तीन छन्दोंकी विद्या' है। मंत्र २६ में 'घर्मविद्या' और २७, २८, २९ में 'गो विद्या' है। मंत्र ३० में 'जीवविद्या' है, जिसे अमृत और मर्त्यका संयोग कहा है। मंत्र ३१ में 'गोपा विद्या' है। ३२, ३३ में 'मातृपितृविद्या' या 'योनि विद्या' है। मंत्र ३४, ३५ में ब्रह्मोद्यके प्रश्नोत्तर शैली द्वारा 'यज्ञविद्या' के कई सूत्रोंका वर्णन है। मंत्र ३६ में 'सप्तार्ध गर्भविद्या' है। जिससे भुवनका रेतस् तत्व निर्मित हुआ है। ३७ में 'ऋतस्य प्रथमजा वाक्' विद्या है। ३८ में 'मर्त्यामृतसयोनि' विद्या है, जिसका मंत्र ३० में उल्लेख आचुका है। मंत्र ३९ में 'अक्षर' विद्या है। मंत्र ४० में 'भगवती अघ्न्या गौ' विद्या है। ४२ में 'क्षराक्षर' विद्या है। ४३ में 'उक्षापृश्नि' विद्या है। मंत्र ४४ में 'त्रयः केशिनः' विद्या है। ४५ में 'चतुष्पदी वाक्' विद्या है। ४६ में 'एकं सत् बहुधा' विद्या है। ४७ में वरुणके 'आपो कोक' या 'ऋत सदनकी कृष्णनियान' विद्या है। मंत्र ४८में 'संवत्सर चक्र' विद्या है। ४९में 'सरस्वतीकी अमृतपोषण' विद्या है। मंत्र ५० में 'यज्ञद्वय' विद्या है। मंत्र ५१ में 'पर्जन्य विद्या' है। मंत्र ५२ में 'दिव्यसुपर्ण' या 'बृहद् वायस' विद्या है।

इस प्रकार 'अस्य वामीयसूक्त' के ५२ मंत्रोंमें दीर्घतमा ऋषिने ऋग्वेदकी अनेक विद्याओंका सूत्र रूपसे संकलन करते हुए उनके विषयमें कितनी ही नवीन व मार्मिक व्याख्यायें दी हैं। दीर्घतमाका यह प्रवाचन संक्षिप्त और सारगर्भित होते हुए भी कितने ही नये तत्वोंकी ओर हमारा ध्यान दिलाता है। यदि हमें इन विद्याओंमें रुचि हो और ऋग्वेदमें अन्यत्र भी हम इनका अन्वेषण करें, तो हम संभवतः 'अस्य वामीयसूक्त' के पूरे महत्त्व तथा सृष्टि विद्यापरक संगतिका अनुभव कर सकेंगे। यह सूक्त पूर्व समयसे ही शीर्षप्रहेलिका माना जाता रहा है, किन्तु इसके रचयिताने जिस ऊंचे धरातलसे सृष्टिके मूलभूत तत्वोंका परिगणन चाहा था, वहां तक ऊंचे उठकर सोचा जाए, तो सूक्तिके अर्थ बहुधा प्रसन्न हो उठते हैं। अकेले 'अस्य-वामीय' सूक्तको ऋग्वेदीय विद्याओंकी अनुक्रमणिका कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जा सकता है। ऋग्वेदकी पारिभाषिक शब्दावलि की सहायतासे 'अस्य वामीय' के मंत्रोंपर पूरा भाष्य रचनेकी आवश्यकता है।

सायणके अतिरिक्त इस सूक्त पर आत्मानन्द (१३ वीं शती) की टीका भी मिलती है। ये भाष्यकार सायणके पूर्ववर्त्ती हैं। इस टीकाका प्रकाशन पहले लाहौरसे हुआ था, पुनः डॉ. कुन्हनराजाने किया। इसमें प्रथम मंत्रका भाष्य इस प्रकार है—

"अस्य वामस्य इत्यस्यां ऋचि अवस्थात्रयोक्तिपूर्वं आत्मा उच्यते चित्स्वरूपः। अस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणस्यापरोक्षस्य। वामस्य कुब्जस्य शरीरेण परिच्छिन्नस्य व्यापकस्य वा। यो होता उद्गाता विचारकः तस्य होतुः। जाग्रदवस्थायां नाम्ना विश्वस्य प्रथमस्य भ्रातुः द्वितीयो मध्यमः अस्ति भवति। मध्ये स्वप्ने भवतीति मध्यमः। नाम्नो तैजसः। अश्नः। मेघस्य गिरेर्वा नामैतत्। तेजसो हि मेघसदृशः निद्रया तिरोहिततेजसस्त्वात्। स्वप्नाख्यगन्धर्वनगराधिष्ठातृत्वाच्च। गिरिवदाश्चर्यविषयः। तदुक्तम्—

आद्यो विश्वस्तैजसोऽद्रिश्चान्तिमः प्राज्ञ ईरितः।
तुरीयं श्वेतमत्राहुः सर्वानुस्यूतमद्वयम्॥

इति। अस्य होतुस्तृतीयो भ्राता सुषुप्तो नाम्ना प्राज्ञो घृतपृष्ठः। घृतौ क्षरितौ लीनौ पृष्ठौ परिभवौ बाह्यप्रदेशसमौ जागरस्वप्नौ यस्मिन्स घृतपृष्ठः प्राज्ञः। घृ क्षरणदीप्त्योः। अत्र विश्वादिषु त्रिषु विश्पतिं विश्वतैजसप्राज्ञानां पतिं पातारं स्वचैतन्यदानेन रक्षकं तुरीयम्। सप्तपुत्रम्। सप्त महदादयो जगत्प्रकृतयः पुत्राः कार्यभूताः विकृतयो यस्य स तथा। अपश्यं दृष्टवानस्मि।

महा माहात्म्ययोगाद्दीर्घतमा अपरोक्षं परोक्षं च तत्त्वदात्मैवं भूत्वा वक्ति जगदनुग्रहार्थम्। प्रथमं-अस्य इति पदं अन्तोदात्तम्। 'ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' इति तृतीयादिविभक्तिरुदात्ता। द्वितीयं-अस्य इति पदं अनुदात्तम्। 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ' इत्यनुदात्तत्वात्प्रान्तोदात्तं शास्त्रमस्ति।'

"इसमें आत्मानन्दने तीन भाइयोंको चित्स्वरूपक आत्माकी तीन अवस्थायें माना है, जिनके नाम वैश्वानर, तैजस् और प्राज्ञ हैं। एवं इन तीनोंसे ऊपर चौथी अवस्था तुरीय कहलाती है। जो वामपलित है वही कुब्ज या प्रत्यक्ष शरीर है, वही भूतात्मा है, जो पृथिव्यादि पंचभूतोंसे निर्मित होनेके कारण वाम अर्थात् कुब्ज या प्रत्यक्ष है, अर्थात् जो प्राण रूपमें विराट् है वही शरीर रूपमें वामन या कुब्ज हो जाता है। होता का अर्थ विचारक अर्थात् जाग्रत अवस्थामें रहते हुए मन या बुद्धि द्वारा विचार करनेवाला है। यही वैश्वानर नामका पहला भाई है। इसका दूसरा भाई मध्यम अर्थात् स्वप्नावस्थावाला है, जिसे तैजस् कहते हैं। अश्नका अर्थ है मेघ या पर्वत। जो तैजस् है वह स्वप्नस्थानीय होनेके कारण मेघके समान प्रकाशको तिरोहित करता है। अथवा पर्वतके समान आश्चर्यका विषय है। जैसे कि कहा है कि वैश्वानर प्रथम और तैजस् अद्रि है। इसका तीसरा भाई वही है, जिसे सुषुप्त या प्राज्ञ कहते हैं। इसे घृतपृष्ठ कहा गया है, क्योंकि पृष्ठ अर्थात् बाह्य स्थानके रहनेवाले जागरित और स्वप्न इसमें घृत या लीन रहते हैं। इनमें चौथा तुरीय ही 'विश्पति' है। क्योंकि वह तीनोंका पति या पालक है। उसे सप्त पुत्र इसलिए कहा जाता है, कि मध्यमादि सप्त, जिनसे जगत् बना है, उसी तुरीयके पुत्र या विकृति हैं। ऐसे ही तुरीय चैतन्यात्माका मैंने साक्षात्कार किया है।'

वस्तुतः आत्मानन्दका जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिपरक अर्थ और सायणका अग्नि, वायु, आदित्यपरक अर्थ दोनों ही ग्राह्य हैं। वैदिक सृष्टिविद्याके अनुसार एक ही परात्पर महातत्त्व चतुष्पादके रूपमें अपने एक अंशसे अमृत और अनिरुक्त बना रहता है, और तीन भागोंसे इस त्रेधा विश्वका निर्माण करता है। वैदिक त्रिकवाद ही अग्निके तीन भ्राताओंके रूपमें यहां अभीष्ट है। अग्नि ही प्रजापति है। जिस प्रकार एक ही अग्नि यज्ञके लिए त्रेधा विभक्त हो जाता है, उसीप्रकार एक अनिरुक्त अमूर्त प्रजापति त्रिगुणात्मक विश्वके रूपमें मूर्त या प्रकट हो रहा है। यद्यपि यास्कने अपनी व्याख्यामें बहुत स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कहा है, किन्तु दुर्गाचार्यने अपनी टीकामें लिखा है। यास्कके मतमें भी अग्नि, वायु, और आदित्य ही तीन भ्राता हैं। ये तीनों ही वैदिक त्रिकके मूल हैं। इन तीनोंकी नाम गणनाके बाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिर और तो दूसरे त्रिकोंकी व्याख्या ही शेष रह जाती है। अग्नि, वायु और आदित्य ये तीन संचालक प्राण हैं। ये तीन देव तीन लोकोंके अधिपति हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मण' के अनुसार अग्नि पुरोहित है और पृथ्वीलोक उसका पुरोधा है। वायु पुरोहित है और अन्तरिक्ष लोक उसका पुरोधा है, इसी प्रकार आदित्य पुरोहित और द्युलोक उसका पुरोधा है—

अग्निर्वाव पुरोहितः पृथिवी पुरोधाता।
वायुर्वाव पुरोहितः अन्तरिक्षं पुरोधाता।
आदित्यो वाव पुरोहितः द्यौः पुरोधाता।
(ऐत. ब्रा. ८।२७)

पुरोहितका शब्दार्थ है प्रत्यक्षरूपसे आया हुआ प्राण अर्थात् वह अध्यात्मप्राण जो भौतिक शरीरमें प्रकट होता है। शतपथके अनुसार प्राणसे बढकर सब भूतोंका और कोई हितकारी नहीं है। अतएव प्राणोंका ही नाम हित है—

प्राणो वै हितं प्राणो हि सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हितः॥
(शत. ब्रा. ६।१।२।१४)

अत एव तीन लोक और तीन देव एक दूसरेसे अभिन्न हैं। तीन देवता अथवा तीन संचालक प्राणोंको ही वैदिक भाषामें नर कहा जाता था। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ रूपी तीन विषयोंके तीन नरों या प्राणोंकी जो समष्टि है, उसीकी वैदिक संज्ञा वैश्वानर थी—

स यः स वैश्वानरः। इमे स लोका। इयमेव पृथिवी विश्वं अग्निर्नरो, अन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरो, द्यौरेव विश्वमादित्यो नरः॥
(शतपथ ब्रा. ९।३।१।३)

मंत्रार्थ करते हुए कई प्रश्न होते हैं; जैसे पहले भाईको वाम और पलित एक साथ ही क्यों कहा गया है? वामका अर्थ है सुन्दर और पलितका अर्थ है वृद्ध। इन दोनोंका पहले भाईमें कैसे समन्वय है? अश्नका अर्थ है बहुत खाने-वाला। मंझला भाई कौन है? उसे भक्षणशील क्यों कहा गया है? तीसरा भाई कौन है? उसके सम्बन्धमें घृतपृष्ठका ठीक अर्थ क्या है? विश्पति कौन है, उसे सप्तपुत्र क्यों कहा गया है? वे सात पुत्र कौनसे हैं? सायणने 'तस्य' के साथ 'वस्य' का अध्याहार किया है। किन्तु प्रश्नको उठाकर उसका समाधान नहीं किया। पलित शब्दका अर्थ सायणने 'पालयिता' किया है। क्या वह उचित है?

मंत्रोंमें ऋषियोंकी यह शैली होती है, कि शब्दका जो प्रतीत अर्थ है उसे स्वीकार करते हुए वे अपने अभिप्रायकी व्यंजना करते हैं। ऐसा ही वाम, पलित, अश्न, घृतपृष्ठ, विश्पति, सप्त पुत्र आदि शब्दोंके विषयमें यहां है।

इस मंत्रमें अग्नि और उसके तीन भ्राताओंका वर्णन है। अग्नि ही विश्पति है, वही सप्त पुत्र है। अग्नि यहां प्राण तत्त्व है, जो हरएकके भीतर विद्यमान है। विश्का अर्थ प्रजा है—

आद्या हीमाः प्रजा विशः। (शत. ब्रा. ४।२।१।१७)

विश्पति प्रजापति है। वह प्रजापति अग्नि है—

अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः।
(शत. ब्रा. १।५।१।८; ३।९।१।६)

एष वै प्रजापतिः। यदग्निः। (शत. ब्रा. ११।१।५।५)

प्रजापतिरेषोऽग्निः। (शत. ब्रा. ६।५।३।७; ६।८।१।४)

प्रजापतिर्वाऽअग्निः। (शत. ब्रा. २।३।३।१८)

प्रजापतिरग्निः। (शत. ६।२।१।२३; १०।६।५।३)

यदि अग्निको मध्य प्राण कहें तो अवान्तरप्राण उसकी प्रजा हैं। इस दृष्टिसे अग्नि प्रजापति या विश्पति है। वसु, रुद्र, आदित्य ये तीन गण देवता भी प्राणोंके ही भेद हैं, और इन सबका अधिष्ठाता तत्त्व वह अग्नि है। जिसे नृषद अर्थात् प्रत्येक मनुष्यमें रहनेवाला उसका संचालक प्राण कहते हैं—

प्राणो वै नृषन्मनुष्या नरस्तद्योऽयं मनुष्येषु प्राणोऽग्निस्तमेतदाह। (शत. ब्रा. ६।७।३।११)

प्राणो वै नृषद्। (शत. ब्रा. ९।२।१।८)

प्रत्येक मनुष्य या प्रजा या विशमें रहनेवाला और उनका शास्ता, स्वामी या पति कौन है? इस प्रश्नका उत्तर है कि वैश्वानर अग्नि राजा है। वही अधिपति प्रजापति है, जिसके शासनमें समस्त भुवन हैं—

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदं अन्नं पच्यते, यदिदमद्यते, तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्य-न्भवति नैतं घोषं शृणोति। (बृ. उ. ५।९।१)

इसी तत्त्वका स्पष्ट उल्लेख गीतामें भी है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥
(गी. १५।१४)

वैश्वानर शब्दमें जिन तीन नरोंका उल्लेख है, वे ही अग्नि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के तीन भ्राता हैं। भ्राता उन्हें कहते हैं, कि जिनमें एक ही पिताकी शक्ति समान रूपसे आविर्भूत होती है। प्रत्येक भाईके लिए पिताका सर्वहुत यज्ञ समान होता है। यही भ्राताओंकी सयोनिता और सबन्धुता है। समान माता-पिताके भ्राताओंका जन्म होता है। माता और पिता दोनों के प्रजनन कर्मसे भ्रातृत्व अस्तित्वमें आता है। द्युलोक और पृथ्वीलोक सबके मातापिता हैं। वे पृथक् होते हुए भी एक दूसरेसे अविनाभूत हैं। दोनोंकी पुत्रकृथ योनियां मिलकर समानभाव उत्पन्न करती हैं।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र
बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तः
अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥ ऋ. १।१६४।३३

प्रत्येक पुरुषके भीतर जो वैश्वानर है वह प्राणाग्निकी ज्योति है। प्राण और अपान दोनोंके घर्षणसे वह ज्योति या रोचना उत्पन्न होती है और शरीरकी सीमामें नित्य संचरण करती है। विराट् विश्वमें जो अमृत और अनन्त सूर्य है, वह भी त्रयी विद्या और वैश्वानरका रूप है। वह अनादि अनन्त ब्रह्मके विज्ञानका ही प्रतीक है।

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः। (यजु. २३। १)

उसी सहस्रात्मा विज्ञानकी एक-एक रश्मि वह संज्ञा या चेतना है, जो प्रत्येक व्यक्ति, मनुष्य, प्रजा या जीवन केन्द्रमें अभिव्यक्त होती है। प्राण और अपान ही उसके प्रत्यक्ष हैं और इन दोनोंका मध्यवर्ती ध्रुव आधार व्यान है, जिस पर ये दोनों आश्रित हैं—

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति अपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं सर्वे देवा उपासते॥

जो वामन है, वही व्यान है, वह प्राण और अपान दोनोंकी प्रतिष्ठा है। वामन ही यहां मंत्रमें वाम कहा गया है। सायणने वामका अर्थ जो कुछ किया है, वह तत्व दृष्टिसे ठीक ही है।

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम्॥ (ऋ. १०।१८९।२)

मध्यरूपी प्राण वामन ही प्रजा या सामन्त प्राणोंके रूपमें विराट् भाव धारण करता है। उसीसे प्रत्येक शरीरकी रचना होती है। द्युलोक और पृथ्वी अर्थात् अमृत और मर्त्य अथवा अध्यात्म और भूत इन दोनोंकी जितनी शक्तियां है, उन सबका सम्राट् वैश्वानर है—

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम
राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे
वैश्वानरो यतते सूर्येण॥ (ऋ. १।९८।१)

वैश्वानर साभिप्राय संज्ञा है। जैसा कि ऊपर शतपथकी व्याख्यासे स्पष्ट किया जा चुका है। तीन नरोंकी समष्टि या साथ रहनेसे वैश्वानरका स्वरूप बनता है। तीन नर अग्नि, वायु, आदित्य हैं। तीन लोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और और द्यौ हैं। तीन प्राण प्राण, अपान और व्यान हैं। तीन छन्द गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती हैं। वे ही त्रिसुपर्ण भी कहे जाते हैं। इन्हींके द्वारा स्वर्ग या अमृतलोकसे सोमका आहरण किया जाता है। विराट् पारमेष्ठ्य अमृत मधु या चैतन्य ही सोम है, गायत्री जिसे त्रिष्टुप् और जगतीके साथ मिलकर पार्थिव भूतलके धरातल पर लाती है। यही प्राणका भूतमें प्रकट होना है। जगती मनस्तत्व है। त्रिष्टुप् प्राणतत्व है और गायत्री वाक् या भूततत्व है। केवल मनस् और केवल प्राण रूपी सुपर्णोंकी शक्तिसे सोम या अमृत मर्त्यमें प्रकट नहीं हो सकता। अमृतको भौतिक धरातल पर लानेके लिए गायत्री या वाक् या भूतका प्रयत्न भी आवश्यक है। अत एव गायत्री द्वारा ही पृथ्वी पर सोम लाया जाता है। अथर्ववेदमें 'त्रयः सुपर्णाः' का स्पष्ट उल्लेख है—

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्
एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः। (अथर्व ५।२८।८)
त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू
नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा
इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम्॥ (अथर्व १८।४।४)

तथ्य यह है कि जहां भी त्रिकका अस्तित्व है, वहीं वैश्वानरकी सत्ता है, अथवा यों कहा जा सकता है, कि वैश्वानरके साथ त्रिकका अभिन्न सम्बन्ध है। वेदोंकी वैश्वानरविद्या प्राणाग्निविद्याका ही दूसरा नाम है। वस्तुतः यह सृष्टि त्रिनरों या तीन पुरुषोंका समाहार है। एक पुरुष क्षर है, दूसरा अक्षर, तीसरा अज या अव्यय है। क्षर पंचभूतोंकी संज्ञा है। इन्हीं पंचभूतोंको वाक् भी कहते हैं। पंचभूतोंमें आकाश सबसे सूक्ष्म है और आकाशका गुण शब्द या वाक् है। अतः वाक्से भूतमात्रका ग्रहण होता है। दूसरा पुरुष अक्षर है, जो प्राणका पर्याय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राण ही भूतोंकी विभूति है। अत एव भूतोंके कूट, या ढेर पर रहनेवाले कूटस्थ प्राणको अक्षर कहा गया है। गीतामें यह परिभाषा और भी स्पष्ट हो जाती है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
गीता

तीसरा पुरुष गीताके अनुसार अव्यय है, वही अज भी कहा जाता है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
गीता

ये ही तीन पुरुष सृष्टिके मूल कारण हैं। ये ही दर्शनोंमें सत्व, रज, तम नामक तीन गुण और पुराणोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश या शिव कहे जाते हैं। त्रिगुण और त्रिदेव एक दूसरेसे अभिन्न हैं। इन्हीं तीनोंको शरीरकी तीन प्राणाग्नियां या वैध यज्ञकी तीन अग्नियां कहा जाता है। भूत, प्राण, और मन इन्हीं तीन अग्नियोंके समिन्धनसे यह अध्यात्मयज्ञ या शरीरयज्ञ प्रवृत्त हो रहा है। जीवन या प्राण ही वैश्वानर अग्नि है। इसकी व्याख्या अनेक प्रकारसे की जा सकती है। किन्तु प्रस्तुत मंत्रमें ऋषि दीर्घतमाने जीवनतत्वके तीन विशेष लक्षणोंकी ओर हमारा ध्यान दिलाया है! जहां भी प्राण या जीवनकी सत्ता है, उस केन्द्रमें ये तीनों अवश्य रहते हैं। इन्हें तीन नियमोंके रूपमें समझा जा सकता है। जीवनका पहला लक्षण वृद्धि है, दूसरा अशन या अन्न ग्रहण और तीसरा प्रजनन। जहां भी भूत प्राणका संयोग होता है, वहां शारीरिक वृद्धि अवश्यम्भावी होती है। वृद्धिका अर्थ है छोटेसे बडा होना। प्रतिक्षण शरीरमें भूतोंका कूट बदलता रहता है। वृद्धिके नियममें एक पक्षका छोटा और दूसरेका बडा होना आवश्यक है। पहलेको बालक और दूसरेको वृद्ध कहा जाता है। एकको वामन और दूसरेको विराट् भी कहा जा सकता है। जो वामन है, वही विराट् रूपमें आता है—

वामनो ह विष्णुरास। (शत. ब्रा. १।२।५।५)
स हि वैष्णवो यमद्वामनः (श. ब्रा. ५।२।५।४)

अर्थात् जो वामन जान पडता था, वह वस्तुतः विष्णु ही था। वामन ही विराट् बनता है। वामन जब महिमाभावसे युक्त होता है, तब विराट् भावमें आता है। माता पिताके शोणित-शुक्र संयोगसे जो गर्भित भ्रूण बनता है, वह वामनका रूप है। वही क्रमशः बढता हुआ पूरा शरीर बन जाता है। प्रत्येक क्षणमें वृद्धिका यह क्रम चालू है। वामनको विष्णु रूपमें लानेका हेतु गति है, जो देश और कालमें प्रकट होती है। तीन लोक और तीन काल यही विष्णुके तीन चरण हैं। ऋग्वेदमें वामन और विराट्की कल्पनाको क्रमशः युवाकुमार और बृहद् शरीर भी कहा गया। जो वामन है, वही युवाकुमार या बटु रूपधारी है। युवा वाम या सुन्दर होता है। ऋग्वेदमें वामन और विष्णुके इस पारस्परिक सम्बन्धको गणितकी भाषामें बहुत ही सुन्दर ढंगसे कहा गया है—

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः
चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिः
युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्॥ (ऋ. १।१५५।६)

यह जीवन या प्राण युवाकुमार है। उसका विमान या सूत्रमापन होता है। किस क्रमसे और किस रूपमें वृद्धि होगी, इसका निश्चय गर्भके समयमें ही हो जाता है। मूल भूत युवाकुमार वृद्धिके द्वारा बृहत् शरीर धारण कर लेता है। उस कुमार या वामनके पास एक चक्र है। यह वृत्त चक्र चार नवतियोंसे बना है अर्थात् इसके ३६० भाग होते हैं। प्रत्येक भाग या अंश गतिशील है। जहां गति है, वहीं अश्वतत्व रहता है। सरल शब्दोंमें गति ही अश्व या अश्व ही गति है। अतएव चार नवति या समकोण रूपी नमनसे वृत्तचक्र बनता है, वही काल चक्र है। जिसमें तीनसौ साठ अश्वोंका वेपन या कम्पन हो रहा है। इसीसे संवत्सर चक्रका स्वरूप बनता है। प्रत्येक अहोरात्र एक एक अश्व है। उन्हें युवाकुमार अपने चारों ओर परिकल्पित करता है। वही चक्र वामनके पास है और वही विराट् विष्णुके। इसका आशय स्पष्ट है अर्थात् वृत्तका जो केन्द्र है, उसमें भी तीनसौ साठ अंश हैं और जो परिधि है, उसमें भी चार समकोण या तीन सौ साठ अंश हैं। केन्द्र ही गतिके प्रभावसे महिमाभावको प्राप्त होता है। वामन और विराट्, केन्द्र और परिधि, बिन्दु और मण्डल, अणु और महान् इन द्वन्द्वोंमें यद्यपि परस्पर महान् भेद दिखाई देता है, किन्तु वस्तुतः दोनों एक हैं। दोनोंका अन्तर वृद्धि या महिमा भाव पर ही है। उन्हीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की ओर यहां वाम और पलित इन दो शब्दोंसे संकेत किया है। जो वाम है, वह सुन्दर है, युवा है। वह कुमार है, जो बार बार नये नये रूपमें जन्म लेता है। उसीके लिए कहा है—

नवो नवो भवति जायमानः।

प्रत्येक बालक प्राणका वही नूतन रूप है, जो देश और कालके सांचेमें ढलकर बहुधारूपमें आता है और फिर चला जाता है। जो वाम है, वही वामन, बटुक, कुमार या प्राणका नया नया अवतार है, इसके विपरीत अखण्ड, चैतन्य, अनादि, अनन्त प्राणतत्व सदा अविचल है। वह मार्कण्डेय या लोमशके समान सहस्रायु है, वही पलित है। जिसके एक एक लोममें प्रजापति ब्रह्माकी एक एक आयु निहित है। वह कभी मरता नहीं। पृथ्वी और आकाशके विशाल अन्तरालमें व्याप्त वृक्षके समान स्तब्ध और ऊर्ध्व है। जितना इस विश्वरूपी अश्वत्थका विस्तार है, उतना ही पलित, प्रजापति या ब्रह्मका है। वह सबका पिता और पालक है।

इसप्रकार प्राणाग्निके दो रूप हैं। एक देश कालमें जन्म लेनेवाला पालक है और दूसरा वह जो देशकालसे अतीत है, पर ध्रुव सत्तावान् है, वही पलित है। बाल और वृद्ध दोनों एक ही तत्वके दो पक्ष हैं। उसे 'उभयतः शीर्ण' कहा जाए तो उपयुक्त होगा, जिसका एक सिर कुमारका तथा दूसरा वृद्धका है। वृद्धि या महिमा भाव दोनोंका नियामक स्पन्दन है। यही अग्निका पहला भ्राता है।

यहां सायणने 'तस्य' के अन्वयके लिए 'यस्य' का अध्याहार किया है। पर 'तस्य' के लिए प्रयुक्त यह 'यस्य' कौन है, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया। वस्तुतः यहां 'यस्य' के अध्याहार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। 'अस्य' और 'तस्य' ही पर्याप्त हैं। 'अस्य' का संबन्ध वामसे और 'तस्य' का सम्बन्ध पलितसे है। दोनों ही अग्नि रूप होता के लिए हैं। जो वाम या कुमार या प्रत्यक्ष है उसके लिए 'अस्य' है और जो पलित या परोक्ष है उसके लिए 'तस्य' है। 'अस्य वामस्य' और 'तस्य पलितस्य' यही अन्वय अर्थकी दृष्टिसे समीचीन है। वैदिक शैलीमें प्रत्यक्षके लिए 'यह' और परोक्षके लिए 'वह' प्रयुक्त होता है।

जीवनका दूसरा लक्षण 'अन्न ग्रहण' है। जहां सूतमें प्राणकी सत्ता है, वहां अन्न और अन्नादका नियम अनिवार्य है। इसे ही ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य भी कहते हैं। (Assimilation, Allimination)। प्राण या अग्नि अन्नाद है। वह शक्तिरूप है, उसे जीवित रखनेके लिए अन्न या ईंधन चाहिए। उसका अन्न सोम है। फल, शाक, धान्य, दुग्ध आदि समस्त अन्न सोमके रूप हैं। इसी सोमको खाकर अग्नि जीवित रहती है। अत एव प्राणाग्निका जो दूसरा भाई है, उसे 'अश्नः' कहा गया है। बहुत खानेवाला उसका यही लक्षण है। जन्मसे मृत्यु पर्यन्त यह क्रम चलता रहता है। अग्नि बाहरसे अन्न लेती है और उसे अपनी शक्तिसे पचाकर अपने लिए बल उत्पन्न करती है। स्थूल अन्नसे सूक्ष्मशक्तिका निर्माण शरीरके भीतर अनेक यंत्रोंके विचित्र रासायनिक प्रक्रियाओंसे होता है। चींटीसे लेकर हाथीतक सबके शरीरोंका यही नियम है। वृक्ष वनस्पतियोंमें भी प्राणाग्नि है। वे भी अन्न और जल लेकर ही जीवित रहते हैं। स्थूल अन्नको इष और शक्तिको ऊर्ज कहा है—

इषे त्वा ऊर्जे त्वा। (यजु. १।१)

यही प्राणियोंके जीवनका पूर्ण सत्य है। अन्न खाना और उससे शक्ति उत्पन्न करना, यही प्रकृतिसिद्ध यज्ञ प्राणीशरीरका अनिवार्य धर्म है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम बाहरसे जो अन्न लेते हैं, उसे पचाकर शक्तिके रूपमें परिवर्तित करते हैं और उस अन्नका एक अंश उच्छिष्ट या व्यक्त भागके रूपमें शरीरसे बाहर फेंकते हैं। इसे 'प्रवर्ग्य' भी कहा जाता है। अन्नका जो अंश शरीरकी अग्नि शक्ति और शरीर संवर्धनके लिए अपने ही केन्द्रमें आत्मसात कर लेती है, उसे 'ब्रह्मौदन' कहा जाता है। वैश्वानर अग्नि ही शरीरस्थ ब्रह्म है। इसका जो ओदन, भात या अन्न है, वही 'ब्रह्मौदन' है। ब्रह्मौदन अन्नादका रूप है। जहां ब्रह्मौदन है, वहां प्रवर्ग्य अवश्य रहता है। प्राणीकेन्द्रसे प्रवृत्त अर्थात् अलग किए भागको 'प्रवर्ग्य' कहते हैं।

वस्तुतः यह समस्त विश्व ब्रह्मका उच्छिष्ट प्रवर्ग्य है। ब्रह्मौदन या प्रवर्ग्यका नियम प्रत्येक प्राणीकेन्द्रमें अनिवार्य रूपसे रहता है। वह चेतना या जीवनका लक्षण है। ब्रह्मके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए भी सुप्तिभावमें आना आवश्यक है। अर्थात् उसकी निःश्वसित या प्राणन क्रियासे विश्वका प्रादुर्भाव होता है। अग्नि प्रजापति है। सोमात्मक विश्व अन्नाद रूप प्रजापतिका अन्न है। ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य अथवा अन्नाद और अन्न इस नियमके बलसे ही सृष्टिकी प्रक्रिया चालू है। अग्निरूप प्रजापतिका जो मध्यस्थानीय भक्षणशील आत्मा है, वह हम सबके भीतर विद्यमान है। अशनाया या बुभुक्षा उसका स्वरूप है। प्राणकी बाहरसे अन्न लेनेकी इच्छाको क्षुधा या भूख कहते हैं। अशनाया तत्वकी ही संज्ञा रुदन है। बालक भूखसे रोता है। ऐसे ही प्रत्येक प्राणीके भीतर जो प्राणाग्नि है, वह भूखसे व्याकुल होकर मानों रुदन करने लगती है, और हम उसे अन्न देकर कुछ समयके लिए चुप कर देते हैं। जब अन्न पच जाता है, तो वैश्वानर प्राण या जठराग्नि पुनः व्याकुल हो उठती है। शौनकने बृहद्देवतामें इसी अग्निको लक्ष्य करके 'जठरे जठरे ज्वलन्' कहा है। जठराग्निका बुभुक्षित रूप 'रुद्र' कहा जाता है। रुद्रकी दो व्याख्या हैं। जैसा कि शतपथ ब्राह्मणमें कहा है—

यदरोदीत् तस्मात् रुद्रः।

मध्य प्राण इस शरीरमें आया, उसने अशनाया भूखके कारण रुदन किया, इसलिए वह रुद्र कहा जाता है। प्राणाग्निरूपी रुद्रका यह स्वरूप आयुपर्यन्त चलता रहता है। यही रुद्रका मन्यु या क्रोध है। जब रुद्र क्रोधित हो उठते हैं तो उनका यह भयंकर रूप विनाशकारी होता है। इसे ही पुराणोंकी परिभाषामें भैरव कहा गया है। यही रुद्र शब्दका दूसरा अर्थ है। जो अग्नि सोम या अन्न नहीं पाती, वह शरीरको ही भस्म करने लगती है। यदि कोई हठपूर्वक प्राणको अन्न न दे अथवा अन्नाद अग्निमें अन्न रूप सोमकी आहुति न डाले, तो उस रुद्ररूपी अग्निका क्रोध इतना बढेगा, कि वह जिस शरीरका प्रतिपालक है, उसे ही नष्ट कर डालेगा। अग्नि सोमके बिना रुद्र और सोमके साथ शिव बनता है। रुद्र और शिवका यह स्वरूप और नियम प्रत्येक प्राणीकेन्द्रमें विद्यमान है। यही अन्न और अन्नादका नियम है। हाथीसे चींटीतक सब प्राणियोंका मुंह अन्नके लिए खुला हुआ है। यही अग्निका मंझला भाई सबके भीतर है। ऋषि सृष्टिके महान् तत्वको कहना चाहते थे। उसकी अभिव्यक्तिके लिए उन्होंने विशेष प्रकारकी शैली चुनी। उनके द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ वैदिक साहित्यमें ही पाये जाते हैं। पुराण-भाषामें जो त्रिदेव हैं, वे ही अग्निके तीन भाई हैं। वृद्धिके नियमको यदि विष्णु कहा जाए तो अन्न और अन्नादका नियम ब्रह्माका रूप है।

अग्निका तीसरा भाई 'घृतपृष्ठ' कहा गया है, अर्थात् उसकी पीठ पर घी है अथवा चारों ओर घीका आवरण या लेप है। घृत संज्ञा आज्य या रेतस् तत्वकी है—

रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन्। (अथर्व ११।८।२९)

अर्थात् पुरुषके शरीरका जब निर्माण होने लगा, तब जिस रेतस् या शुक्रसे शरीर बना, उसीके माध्यमसे सब पार्थिव शक्तियां व देव पुरुषके शरीरमें प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण ग्रंथोंमें इस परिभाषाको बार बार स्पष्ट किया है—

प्राणो वै आज्यम्। (तै. ३।८।१५।२।३)
रेतो वै आज्यम्। (शत. १।३।१।१८;१।५।३।१६)
एतद्वै देवानां प्रियं धाम यदाज्यम्। (शत. १३।३।६।२)

जो आज्यकी परिभाषायें हैं, वे ही घृतकी भी हैं—

तेजो वा एतत्पशूनां यद् घृतम्। (ऐ. ८।२०)
आग्नेयं वै घृतम्। (शत. ८।४।१।४१;९।२।२।३)
सर्वं देवत्यं वै घृतम्। (कौ. २१।४)
रेतो वै घृतम्। (शत. ९।२।३।४४)
रेतः सिक्तिर्वै घृतम्। (कौ. १६।५)

आज्य, घृत, रेत ये एक ही तत्वके सूचक हैं। विश्वके जन्मके लिए जिस शुक्रतत्वकी आवश्यकता थी, उसे ऋग्वेदमें 'भुवनस्य रेतः' कहा है—

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः। (ऋ. १।१६४।३६)

यही 'प्रत्न रेत' भी कहा जाता है अर्थात् वह अनादि अनन्त और सनातन रेतस् तत्व है, जिससे एक ओर समस्त विश्वका और दूसरी ओर उसीके अंगभूत समस्त प्राणियोंका जन्म हो रहा है। यही रेत या घृत प्रजननका प्रतीक है। इससे जीवन या प्राणका तीसरा नियम सूचित होता है। जहां जीवन है वहां रेत या प्रजनन भी अवश्य रहता है। जीवनका यही स्वभाव है, वह जिस बीजसे उत्पन्न होता है। स्वयं परिपक्व होने पर उसी प्रकारके बीजका निर्माण करता है। आमका वृक्ष जिस गुठलीसे जन्म लेता है, फिर उसी प्रकारकी गुठलीको उत्पन्न करता है। बीजसे प्रारंभ करके पुनः बीजतक पहुंचना यही जीवनका चक्र है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी पहियेके घूमनेसे जीवन आगे बढता रहता है। प्रकृतिका यही अटल विधान है। जो बालक बीजसे जन्म लेता है, वह पहले कच्चा रहता है, किन्तु बीजकी सत्ता उसकी शारीरिक धातुमें अवश्य रहती है। वही कच्चा बीज उसके युवा होने पर पक जाता है। जैसे फलोंमें उनकी गुठली पकने पर प्रकट दिखाई देने लगती है। पका हुआ बीज अपने जैसे बीजको उत्पन्न करनेकी क्षमता रखता है। यही यौवनका प्रभाव है। बालपन, यौवन और वृद्धावस्था ये ही जीवन रूपी संवत्सरकी तीन ऋतुयें है। जीवनको यदि गायत्री शक्ति कहा जाए तो आयुकी तीन अवस्थायें उसकी तीन समिधायें हैं, जिनके क्रमशः समिन्धन या प्रज्वलनसे प्राणाग्नि अपना स्वरूप प्रकट करती है। इस प्रकार शरीरस्थ प्राणाग्नि और घृत या रेततत्त्व दोनोंका परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है, वही अग्निका तीसरा भाई है।

शरीररचनाकी दृष्टिसे भी तृतीय भ्राता सभी अर्थोंमें घृतपृष्ठ है। जो शरीरस्थ सप्त धातुएं हैं, वे रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि और मज्जाके क्रमसे संचित और परिणत होती हुई अन्तमें शुक्रका निर्माण करती हैं। और वही शुक्र केन्द्रीय नाडी जालको सींचता हुआ मस्तिष्कको पोषण और शक्ति देता है। उसे वैज्ञानिक भाषामें सुषुम्ना और मस्तिष्कका पोषक सोम कहा जाता है, (Cerebro-Spinal Fluid)। यह शरीरका सबसे मूल्यवान् रस है। इसीसे मस्तिष्कके असंख्य कोषाणु सिंचित होते हैं। इसीके लिए संकेत है—

सोमो राजा मस्तिष्कः। (अथर्व ९।७।१)

मस्तिष्कके कोष मनःतत्त्वके भौतिक आधार हैं और शरीरके प्रत्येक कोष या अणु-परिमाणुमें उसकी चेतना व्याप्त रहती है। वस्तुतः जिसे केन्द्रीय नाडीजाल कहते हैं, उसीका ऊपरी भाग मस्तिष्क और निचला भाग सुषुम्ना है। इसमें घृत, रेत या सोम व्याप्त रहता है। यही अग्निके तृतीय भ्राताका घृतपृष्ठ रूप है। इस भाईकी पहचान त्रिदेवोंमें शिवसे की जा सकती है। शिवका ही सम्बन्ध मनसिज या कामदेवसे है। एक ओर उन्होंने कामको वशमें किया है, दूसरी ओर वे अर्धनारीश्वर हैं। अर्थात् सृष्टि रचनाके लिए अपने वामांगसे वे मातृरूप भी धारण किए हुए हैं। पिता माताके युगसे ही प्रजनन या प्रजाकी सृष्टि होती है। पिताका शुक्र और माताका शोणित दोनोंकी समुदित संज्ञा घृत है। वे परस्पर अविनाभूत हैं। प्रकृतिने प्रजोत्पादनके लिए दो पुत्रकृथ योनियोंका निर्माण किया है। उन्हींकी संज्ञा माता पिता है। पृथक् होते हुए भी उन दोनोंकी एक योनिता है। इसी दृष्टिसे 'शान्ति पर्व' में अग्नि और सोमको एक योनि कहा है—

अग्निषोमौ कथं पूर्वमेकयोनिप्रवर्ततौ।

(शान्तिपर्व ३२९।१ पूना संस्करण)

ये ही दो अरणियां हैं, जिनके पारस्परिक घर्षणसे अग्निरूप पुत्र जन्म लेता है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा
गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवेदिवे ईड्यो जागृवद्भिः
हविष्मद्भिः मनुष्येभिरग्निः॥ (ऋ. ३।२९।२)

इस प्रकार अग्निके तीन भ्राता जीवनतत्त्वके ही तीन विशेष लक्षण हैं, अर्थात् बुद्धितत्त्व, अन्न अन्नादतत्त्व और प्रजनन तत्त्व। इन्हें ही क्रमशः भूत, वाक्, प्राण और मन भी कहा जा सकता है। मन, प्राण और वाक्की समष्टि ही आत्मा या प्रत्येकका जीवन केन्द्र है—

एतन्मयो वा अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयो प्राणमयः। (शत. ब्रा. १४।४।३।१०)

वाक् या भूत तत्त्व अग्निका पहला भाई है। प्राण दूसरा या मंझला भाई है और मन या प्रजनन तत्त्व तीसरा भाई है। एक ही पिताकी शक्ति इन तीनों भाइयोंके रूपमें प्रकट होती है। यही तो वैश्वानरके स्वरूपके निर्माण करनेवाले तीन नर हैं।

अग्निको सप्त पुत्र क्यों कहा गया है, इसका भी कारण है। मन, प्राण और पंचभूत ये ही सप्त पुत्र हैं। एक ही मध्य प्राण या मूल प्राणाग्नि इन सात रूपोंमें विभक्त होकर शरीरको धारण करती है। ये ही इस शरीर यज्ञके सात होता हैं। इन्हें ही दूसरी परिभाषाके अनुसार सप्तविप्र या सप्त ऋषि भी कहा जाता है। एक ही पिताकी सन्तान होने पर भी ये एक दूसरेसे भिन्न हैं। जैसा कि हम प्रत्यक्ष देखते हैं। मन सबसे अधिक सूक्ष्म है, उसकी अपेक्षा प्राण कम सूक्ष्म है और उसकी तुलनामें आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी उत्तरोत्तर क्रमशः स्थूल होते जाते हैं। इन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंचभूतोंका सम्मिलित संकेत वाक् है। वाक् या शब्द आकाशका गुण है और आकाश पांचोंमें सूक्ष्म होनेके कारण सबका संग्राहक है।

इसप्रकार दीर्घतमा ऋषिने अपनी अपूर्व शैलीमें अग्निके तीन भ्राता और सप्त पुत्रोंका जो वर्णन किया है, वह वैश्वानररूपी शारीरिक अग्निके लिए चरितार्थ है। मंत्रके 'अत्रापश्यं' शब्द सूचित करते हैं कि इस रहस्यमय प्राणाग्निका यहीं अर्थात् इसी शरीरमें दर्शन संभव है। शरीरसे बाहर वैश्वानर प्राणका दर्शन नहीं किया जा सकता। इसी दृष्टिसे ऋग्वेदमें जो सबसे पहला विशेषण अग्निको दिया गया है- वह है 'पुरोहित'। पुरोहितका अर्थ यज्ञके सम्बन्धमें लोक विदित है, किन्तु उसका दूसरा संकेत भी सुनिश्चित है। पुरः का अर्थ है- सम्मुख दृश्य या प्रत्यक्ष और हितः का अर्थ है- प्राण—

प्राणो वै हितं, प्राणो वै सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हितः।

(शत. ब्रा. ६।१।२।१४)

'अस्य वामीय' सूक्तके इस प्रथम मंत्रमें जिस अग्निके तीन भ्राताओंका उल्लेख है, वह वैश्वानर अग्नि है। 'वैश्वानर' तत्त्वकी पूरी व्याख्याके लिए ऋग्वेद १०।८८ सूक्त देखना चाहिए। यहां अग्निको होता कहा गया है। वहां वैश्वानरको प्रथम होता कहा गया है, सब देव जिसका आश्रय लेते हैं—

यो होताऽऽसीत् प्रथमो देवजुष्टः॥ ऋ. १०।८८।४

उसी वैश्वानर अग्निको देवोंने विश्वविकासके लिए तीन रूपोंमें कल्पित किया—

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निं
अजीजनन् शक्तिभिः रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं
स ओषधीः पचति विश्वरूपाः॥

(ऋ. १०।८८।१०)

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः॥

इस नियमके अनुसार एक ही अग्नितत्त्व विश्वनिर्माणमें त्रेधा विभक्त हो जाता है। उसीसे तीन विश्व, तीन नर और तीन रूपोंका विकास होता है। इन्हींकी समुदित संज्ञा 'विश्वरूप' या 'वैश्वानर' है। वैश्वानर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों लोकोंमें व्याप्त है। उसे समस्त विश्वका केतु कहा गया है। जितने मनुष्य या औषधियां हैं, सब उसकी प्रजायें हैं। वह भुवनोंका राजा है। विश्पति शब्द का अध्यात्मसंकेत स्पष्टतासे समझ लेना चाहिए। जैसा कि ताण्ड्य ब्राह्मणमें कहा है—

अग्निरकामयत विशोऽतिथिः स्यां
विशोविशः आतिथ्यमश्नुवीयेति।

(ताण्ड्य ब्रा. १४।११।३७)

अग्निको विश्पति अर्थात् सब देवोंका अधिपति कहा गया है—

अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति।

(शत. ब्रा. १।६।२।८)

प्रजापतिका जो ध्रुवसंज्ञक विराट् नियम इस ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत है, उसे 'वेदिषद्' होता कहा गया है। वही 'दुरोणसद्' अतिथि है। अर्थात् घर घरमें रहनेवाला अतिथि है। प्रत्येक शरीर एक एक घर है, वही यज्ञ है या यज्ञकी वेदी है। हर घरका गृहपति अग्नि है। वही गार्हपत्य अग्नि वैश्वानर है। इस अग्निको सप्त पुत्र कहनेका आशय अनेक वैदिक सप्तकोंके प्रकाशमें समझना चाहिए। उनके अनेक नाम संहिता और ब्राह्मण ग्रंथोंमें मिलते हैं, जैसे—

सप्त होता, सप्ततन्तु, सप्तरत्न, सप्तपुरुष,
सप्तधाम, सप्तलोक, सप्तार्धगर्भाः।

(ऋ. १।१६४।३६)

सप्तस्वसारः, सप्तमातरः, सप्तवाणी,
सप्तप्राणाः, सप्तपदानि, सप्तछन्द, सप्त
अदिति देव, सप्तविप्र, सप्तपद आदि।

त्रिक और सप्तक वैदिकपरिभाषाओंके सूत्र हैं। जो मूलमें एक है, वही पहले त्रिक भावमें आता है और त्रिकसे मन, प्राण और पंचभूतोंका सप्तधा रूप बनता है। शरीरमें प्राणाग्नि और विराट् ब्रह्माण्डमें सूर्य दोनों एक ही तत्वके रूप हैं—

प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः। (प्रश्न उ.)

\+ \+ \+

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (यजु. ७।४२)

अग्नि भी प्राण और आत्मा है। वैश्वानरसूक्तमें उसे 'यक्षस्य अध्यक्षम्' अर्थात् रहस्यमय यक्षतत्वका अधिपति कहा गया है। जीवनतत्व ही विश्वका सबसे महान्, गुह्य, अपीच्य या अज्ञात रहस्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्म और पुनर्जन्म

(लेखक— श्री टी. एम्. पी. महादेवन)

नैतिकताके अन्तर्गत मनुष्यके ज्ञानपूर्वक किए गए कार्यों-का ही अध्ययन किया जाता है। अर्थात् ज्ञानपूर्वक किए गए कर्मोंका ही नैतिक व अनैतिक दृष्टिसे विचार किया जाता है। एक यंत्रका अथवा एक जानवरका व्यवहार नैति-कताकी सीमाओंसे परे है। यंत्रों एवं बुद्धिहीन प्राणियोंका व्यवहार न नैतिक होता है और न अनैतिक, वह इन दोनोंसे रहित है। इसीप्रकार एक मनुष्य भी जब अन्त-र्बाह्य परिस्थितियोंके कारण बाध्य होकर कुछ कार्य करता है, तो उस कार्यका भी नैतिकताकी दृष्टिसे कोई मूल्य नहीं होता।

इसीतरह एक आदमी जब संवेदनाओं (Passions) के प्रवाहमें कुछ का कुछ कर जाता है और बादमें पश्चात्ताप करता है कि 'ओह! जब मैंने यह किया उस समय मैं अपनेमें नहीं था,' तो ऐसी स्थितिमें भी उसके कार्य या व्यवहारके लिए उसको दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इन सब उदाहरणोंसे यह सिद्ध होता है कि 'नैतिकताके लिए स्वतंत्रता आवश्यक है।' यदि कोई स्वतंत्रतापूर्वक अपने कार्यका चुनाव करता है तो उसी दशामें वह अपने कार्यके लिए नीतिशास्त्रकी दृष्टिमें उत्तरदायी है। पर क्या अपनी इच्छानुसार कार्य चुननेकी स्वतंत्रता हमें प्राप्त है? क्या हम पर प्रायः ऐसी परिस्थितियां हावी नहीं होजातीं कि जिन्हें हम वशमें नहीं कर सकते? तब क्या हमारी इच्छायें स्वतंत्र हैं?

इन समस्याओंके हलके लिए हिन्दुधर्म 'कर्मका' सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जो प्रसिद्ध तो है, पर समझा कम गया है। कई विद्वान् कर्मका सम्बन्ध भाग्यके साथ जोडकर कर्मके सिद्धान्तको निराशाजनक बताते हैं। उनके अनुसार यह कर्मका सिद्धान्त वस्तुतः आलस्य और जडता के लिए एक बहाना मात्र है। पर उनकी यह धारणा सत्य-तासे कोसों दूर है। कर्म मनुष्यकी इच्छा विषयक स्वतंत्रता को देनेवाला है। कर्मका सिद्धान्त कहता है कि 'जो कुछ तुम हो उसके लिए दूसरोंको दोषी ठहरानेके बजाय तुम ही अपनी वर्त्तमान स्थितिके लिए उत्तरदायी हो'। नैतिक जीवन उपद्रवों अथवा विकृतियोंका जीवन नहीं है, इसमें परिस्थिति पर बैठकर रोनेके लिए कोई मौका नहीं है। नैतिक नियमोंका अर्थ ही यह है कि मनुष्यके पूर्व कर्म ही उसके वर्त्तमान परिस्थितिके लिए उत्तरदायी हैं और उसके वर्त्तमान कर्म ही उसके भावी जीवनके प्रसाधक हैं।

ऋग्वेदके मंत्रोंमें आए हुए 'ऋत' शब्दमें कर्म सिद्धा-न्तका संकेत है। ऋतका अर्थ है 'पदार्थोंका अनुशासित क्रम' जैसे-सूर्यका उदय और अस्त होना, चन्द्रमाका बढना घटना, ऋतुओंका क्रमिक परिवर्तन आदि। मंत्रोंमें इस शब्दका अर्थ कुछ विस्तृत है और प्रकृतिके अनुशासित क्रमके साथ साथ मनुष्योंकी नैतिकताका भी इसमें अन्तर्भाव हो जाता है। ऋग्वेदमें देवोंको 'ऋतका पालक' कहा गया है।

वे सज्जनोंको सुख और दुष्टोंको दण्ड देते हैं। श्रेष्ठ वे हैं, जो 'ऋत' का अनुसरण करते हैं। वरुण ऋग्वेदमें नीतिका देवता कहा गया है, वह शारीरिक और नैतिक व्यवहारों पर शासन करता है। वह न्यायशील है। कोई भी उसके निरीक्षणसे बच नहीं सकता। प्रायः वरुणके सभी सूक्तोंमें पापसे बचाने व किए हुए पापोंको क्षमा करनेकी प्रार्थना है। ब्राह्मणग्रंथोंमें, जिनमें यज्ञको मुख्यता दी गई है, 'ऋत' यज्ञका पर्यायवाची हो गया है। प्रत्येक यज्ञका अपना अपना फल है। इह लोकमें सुख और परलोकमें आनन्द प्राप्त करनेका यज्ञ एक साधन है। ये दोनों ऋत और यज्ञ कर्मसिद्धान्तके समर्थक हैं, क्योंकि ये दोनों यह बताते हैं कि हर कर्मके साथ अपना भला-बुरा फल अवश्य संयुक्त रहता है।

उपनिषदोंमें इस कर्मसिद्धान्तका बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है। यहां कर्मका अर्थ केवल कर्म ही न होकर कर्मविपाक भी है। इस नियमके अनुसार नैतिक संसारमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ भी अनियमित व अकारण नहीं है। हम जैसा बोते हैं, वैसा ही काटते हैं। हम अब जो कुछ हैं अथवा जिस परिस्थितिमें हैं, वह सब 'हम पूर्व जन्ममें क्या थे और तब हमने क्या किया' इस पर आधारित है। उसी प्रकार 'हम आगे क्या होंगे और किस परिस्थितिमें होंगे' इस सबका आधार हमारा वर्त्तमान जीवन व कार्य है। कर्मका सिद्धान्त हमें यह बताता है कि हम अपने नैतिक बलको क्षीण होनेसे बचा सकते हैं।

जिसप्रकार शारीरिक बल क्षीण होनेसे बचाया जा सकता है, उसीप्रकार नैतिक बल भी क्षीणतासे बचाया जा सकता है। जो कर्मोंके द्वारा कमाया जा चुका है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकता और जिसके हम अधिकारी नहीं बन पाये उसे हम कभी पा भी नहीं सकते। प्रत्येक कर्म दो रूपोंमें प्रभाव डालता है, (१) हर कर्म अपने परिणामको उत्पन्न करता है और (२) साथ ही चरित्र पर भी प्रभाव डालता है। हर कर्म मानव मन पर अपना संस्कार छोड जाता है। इसी संस्कारसे प्रेरित होकर कर्ता आगेके कर्मोंको करता है। इसीप्रकार मनुष्य चरित्रके अनुसार व्यवहार करता है और फिर उसके व्यवहारके अनुसार उसका चरित्र बनता है। 'एक मनुष्य उत्तम कर्मोंसे उत्तम और बुरे कर्मोंसे बुरा बनता है' (बृह. उ. ४।४।५)

यहां एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि नैतिक संसारका कर्मसिद्धान्त बाह्यसंसारके 'कार्यकारणके स्वाभाविक नियम' (Mechanical Law of Causality) के समान ही है तो फिर स्वतंत्रता कहां रही? उत्तर है-कि आजका विज्ञान एक अपरिवर्त्तनीय और पूर्णतया निश्चित स्वाभाविक नियममें अब विश्वास नहीं रखता। इसके विरुद्ध उसका यह विश्वास है कि प्रकृतिमें कोई भी पदार्थ निश्चित और अपरिवर्त्तनीय नहीं है। भूतकाल यद्यपि निश्चित किया जा सकता है पर भविष्य बिल्कुल अनिश्चित होता है। इसका कारण हमारी अज्ञानता नहीं है अपितु पदार्थोंका स्वभाव ही है। पदार्थ हमेशा बदलते रहते हैं, अतः भविष्यके पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय करना असम्भव है। कार्यकारणका नियम भी सब पदार्थोंकी व्याख्या करनेमें असमर्थ है। बहुतसे कारण भी मिलकर एक निश्चित पदार्थको उत्पन्न नहीं कर सकते। (आजके विज्ञानके अनुसार परमाणु परिवर्त्तनशील हैं, अतः प्रत्येक पदार्थके परमाणु प्रतिक्षण बदलते रहते हैं।)

अब वैज्ञानिक समझ गए हैं, कि 'कार्यकारणके नियम' में यह बडा भारी दोष है। जब मनुष्यकी शारीरिक प्रकृतिमें ही परिवर्तन होते रहते हैं, तो उसकी आन्तरिक प्रकृतिमें परिवर्त्तन होंगे ही, यह सहज अनुमेय है। कर्म पूर्णरूपसे मनुष्यको बन्धनमें नहीं डालता। संसारचक्र अनिवार्य नहीं है। मनुष्य इस चक्रसे छूट भी सकता है। मनुष्यमें यदि चक्रसे छूटनेका एक निश्चयात्मक संकल्प है, तो कर्म उस मनुष्यकी सहायता ही करेगा, उसके उन्नतिके मार्गमें वह बाधक नहीं हो सकता। मनुष्य इस प्रकारके संकल्प करनेमें पूर्णतया स्वतंत्र है। डॉ. राधाकृष्णन्के शब्दोंमें—

'जीवन रूपी खेलमें हमारे हाथमें पत्ते दे दिए गए हैं। हम उन्हें चुनते नहीं। वे हमारे पूर्व कर्मोंके अनुसार मिलते हैं, हम उन्हें अपनी इच्छानुसार नाम दे सकते हैं, अपनी इच्छानुसार यह खेल चला सकते हैं, पर हम जैसा खेलेंगे, उसीके अनुसार हम जीतेंगे या हारेंगे। यही है स्वतंत्रता' (दि हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, पृ. ७५)

भारतीय विद्वान् कर्मको तीन स्वरूपोंमें बांटते हैं-- **संचित, प्रारब्ध** और **आगामी** अथवा **क्रियमाण**। **संचित** पूर्व जन्ममें किये हुए कर्म हैं। इसकी थोडीसी झलक मनुष्यकी इच्छा, विचार, आचार और व्यवहारमें दिखाई देती है। **प्रारब्ध** पूर्व जन्मके कर्मोंका वह भाग है जो वर्त्तमान जीवनके लिए उत्तरदायी है। **क्रियमाण** या **आगामी** कर्म आगे किए जानेवाले और वर्त्तमान समयमें भी किए जानेवाले कर्म हैं। कर्म करनेमें स्वातंत्र्यके मन्तव्यको समझानेके लिए यह उदाहरण प्रायः दिया जाता है।

कल्पना करो कि, एक धनुर्धारी, जिसकी पीठ पर तीरोंसे भरा तरकश लटका हुआ है, एक लक्ष्य पर निशाना लगाता है। एक तीर वह छोड चुका है और दूसरेको छोडनेकी तैय्यारीमें है। तरकशमें भरे हुए तीर '**संचित**' हैं, वह तीर, जो धनुर्धारी छोड चुका है, '**प्रारब्ध**' है, और जिसे वह छोडनेकी तैय्यारीमें है (अभी छोडा नहीं) '**क्रियमाण**' या '**आगामी**' है। इनमें 'संचित' और 'आगामी' पर उस धनुर्धारीका पूरा वश है, पर प्रारब्ध पर नहीं। इसी तरह मनुष्य अपने मार्गको बदलनेमें पूरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वतंत्र है। केवल वे ही पूर्व कर्म जो अब परिणाम ला रहे हैं, उसे भोगने ही होंगे।

कुछ लोगोंकी धारणा यह है कि कर्मके सिद्धान्तमें समाज या मनुष्यताकी सेवाका कोई स्थान नहीं है, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मोंका परिणाम भोग रहा है, अतः उसके भोगमें किसीको टांग अडानेका अधिकार नहीं है। पर वस्तुतः यह एक महान् भ्रान्ति है। यह धारणा प्रत्येक मनुष्यको एक स्वतंत्र इकाईके रूपमें सिद्ध करती है। पर वास्तवमें मनुष्यका समाजके साथ बडा भारी सम्बन्ध है। वह अपने चारों ओरके समाजसे प्रभावित भी होता है। उसे स्वभावतः ही अपने अन्य सदस्योंके सुख दुःखमें भाग लेना होता है। यदि वह अपने सदस्योंके दुःखका कोई हल निकालता है, तो अंश रूपसे उसको भी सुख मिलता है।

इसलिए समाजसेवा कर्मसिद्धान्तमें न केवल संगत ही है अपितु संसारसे छूटनेका साधन भी है। स्वार्थयुक्त कार्य कर्त्ताको बन्धनोंमें डालता है और स्वार्थरहित कार्य बन्धनसे मुक्त करता है। जिस प्रकार कि जहर, जो साधारणतया मारक होता है, शुद्ध कर दिए जानेपर बीमारको जीवन प्रदान करता है। 'इसी मार्गसे, अन्यसे नहीं, किया गया कर्म कर्त्तामें लिप्त नहीं होता' (ईश. उ. २)। इसी निःस्वार्थ कर्मका विवेचन भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें किया है।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त

पुनर्जन्म कर्मके सिद्धान्तका परिणाम है। दो मनुष्योंके आचार विचारकी भिन्नता उनके पूर्व कर्मोंका द्योतन कराती है, और पूर्व कर्म उनके पूर्व जन्मके निदर्शक हैं। इसीतरह हम देखते हैं कि हम अपने सभी कर्मोंका फल इसी जन्ममें नहीं भोग पाते। अतः इन शेष कर्मोंके भोगके लिए आगे भी जन्म आवश्यक हैं। प्रत्येक आत्मा जन्ममरणके चक्रमें फंसी रहती है। 'धान्यके समान ही एक मनुष्य पकता है और धान्यके समान ही वह फिर नवीनता लेकर उगता है' 'जिसप्रकार मनुष्य फटे पुराने कपडोंको फेंककर नये धारण करता है, उसीप्रकार आत्मा जीर्ण-शीर्ण शरीरको छोडकर नये शरीर धारण करती है।' (गीता) 'जिस प्रकार कीडा एक घासके सिरेसे दूसरी घासके सिरे पर पहुंचता है उसीतरह आत्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाती है।' वर्ड्स्वर्थ भी कहता है—

'हमारा जन्म, जिसमें आत्मा हमारे साथ संयुक्त होती है, एक निद्रा है। हमारा जीवन एक तारा है जो बहुत दूरसे आता है और कहीं जाकर अस्त होजाता है। हम परमात्माके पाससे आते हैं, जो हमारा घर-मूल स्थान है।'

अनेक शरीरोंमें आत्माके इस आनेजानेको 'संसार' या 'भवचक्र' कहते हैं। यह चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक कि सब कर्म क्षीण नहीं हो जाते और परमात्माका साक्षात्कार नहीं होजाता।

मुक्तावस्थाकी प्राप्ति तक आत्मा जन्म-मरणके नियमोंमें बंधी रहती है। कवि लाँगफेलोकी भौतिकवादी कल्पना कि 'तुम मिट्टी हो और अन्तमें तुम मिट्टीमें ही मिल जाओगे' वैदिक ऋषियोंको मान्य नहीं। हिन्दुशास्त्रोंमें यह प्रश्न प्रायः उठाया गया है कि क्या मनुष्य मृत्युके बाद भी रहता है अथवा शरीरके साथ वह भी नष्ट होजाता? उत्तर दिया गया है कि आत्मा कभी नष्ट नहीं होती। यदि ब्रह्मज्ञानसे इसके सब कर्म क्षीण हो जायें, तो फिर इसे जन्म नहीं लेना पडता। यह नित्य और शाश्वततत्त्वका साक्षात्कार कर लेता है और फिर संसारमें नहीं लौटता। पंचदशीकार के शब्दोंमें—

'जैसे जलचर प्रवाहके द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाये जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा जन्मसे मृत्यु और मृत्युसे फिर जन्म इस प्रकार संसारके चक्रमें घूमता रहता है'। इस चक्रमें वह अपने कर्मोंके कारण घूमता है।

मृत्यु जीवनका द्वार है। और किस तरहका जीवन एक मनुष्य बिताता है यह उसके कर्म पर आधारित है। वे जिनके कर्म अच्छे रहे हैं, अच्छा जन्म पाते हैं, और बुरे कर्मयुक्त आत्मायें पापपूर्ण जन्मोंमें भेज दी जाती हैं। बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा है कि कर्म तथा ज्ञानके स्तरके अनुसार आत्मायें मनुष्यसे लेकर कीट तकका शरीर धारण करती हैं। लिंग या सूक्ष्म शरीरके साथ साथ आत्माका आवागमन होता है। मृत्युके समय केवल स्थूल शरीर नष्ट होता है। सूक्ष्म शरीर, जो मन, बुद्धि तथा सूक्ष्म इन्द्रियोंका आधार है, पुराने स्थूल शरीरसे वियुक्त होकर नये स्थूल शरीरसे संयुक्त होता है। इस प्रकार चक्र चलता रहता है और उद्देश्य प्राप्त होने पर रुक जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहायता दीजिये

सभी दानदाताओंसे नम्र निवेदन

स्वाध्याय-मण्डल, वैदिक संशोधन संस्थान', पारडी, (जि. सूरत) के पास अमूल्य पुस्तकोंका प्रशंसनीय संग्रह है, जिनकी सुरक्षा करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है। उन पुस्तकोंकी सुरक्षाके लिए एक बृहद् पुस्तकालय बनवानेकी योजना है। जिसका नाम '**महर्षि पुस्तकालय**' होगा। इस योजनामें कमसे कम ४०,००० व्यय होनेकी संभावना है। हम इस बातके लिए प्रयत्नशील हैं कि इस उत्तम कार्यके लिए सरकारसे भी कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त हो और प्रसन्नताकी बात है कि गुजरात सरकारसे इसके लिए १०,००० की प्राप्ति भी हो चुकी है। पर हमारी आशा आप जैसे दानदाताओंकी सहायतासे ही पूरी हो सकती है। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि आप यथाशक्ति इस कार्यमें हमारी सहायता करें। यदि प्रत्येक व्यक्ति कमसे कम भी दान, दे तो हमें बहुत सहायता मिल सकती है। दानी महानुभाव अपनी सहायता मनिआर्डर अथवा चेक द्वारा '**अध्यक्ष, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. सूरत (गुजरात)**' के पते पर भेज सकते हैं। पर पत्रमें अथवा मनिआर्डरके कूपन पर '**पुस्तकालयकी सहायताके लिए**' अवश्य लिखें। जो भी दान देंगे उनके नाम हम अपनी मासिक पत्रिकाओंमें छापेंगे।

मन्त्री—

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदगीता पञ्चदशोऽध्यायारंभः
भगवद्गीताया षोडशोऽध्यायारंभः

श्रीभगवानुवाच—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

भग. १६।१-३

अर्थ— (हे भारत) हे भरतकुलोत्पन्न अर्जुन ! यद्वा ज्ञानज्योतिः में प्रेम रखनेवाले अर्जुन ! (अभयं) किसीसे भय न करना अथवा जिससे कोई भय नहीं करता । क्योंकि नियम यह है ।

'द्वितीयाद्वै भयं भवति' ।

दूसरेसे ही डर लगता है ।

इतरं पश्यति स इतराद्बिभेति, ।

जो अपनेसे भिन्न किसीको देखता है वह दूसरेसे डरता है । जो प्राणी सारे संसारको आत्मरूप देखता है, वह नहीं डरता ।

(सत्त्वसंशुद्धिः) मनकी शुद्धता अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका संयमन करना ।

ध्यानं निर्विषयं मनः ।

मनको सब बाह्यविषयोंसे रोककर ब्रह्माकार वृत्तिमें लगाना, (ज्ञानयोगव्यवस्थितिः) ज्ञानकी मर्यादाको स्थिर रखना अर्थात् सत्याऽसत्य विचारकी मर्यादा स्थिर रखनी, (योगव्यवस्थितिः) 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' चित्तको वृत्तियोंको वशमें रखनेवाले योगाभ्यासकी मर्यादाको स्थिर रखना अथवा 'योगक्षेम' वैदिक कर्मानुष्ठानकी मर्यादा स्थिर रखना, (दानं) अतिथियोंको यथाशक्ति अन्नादि देना, अथवा दूसरोंको ब्रह्मज्ञान देना, अथवा ।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

इस वचनानुसार सात्त्विक दान देना, (दमः) दशों इन्द्रियोंका दमन करना अर्थात् इन्द्रियाधीन न होना, (यज्ञः) सत्संगति, गुरुसेवा और श्रौताग्नि स्थापन अर्थात् प्रतिदिन दोनों समय अग्निमें हवन करना (चः चकारात् स्मार्ताग्न्याधानम्) स्मृत्यनुसार स्थालीपाकादि (स्वाध्यायः) तथा ब्रह्मयज्ञादिका अनुष्ठान करना, (तपः) शीतोष्णसहनशीलता अथवा 'ब्रह्मचर्य और मौन आदि व्रतोंकी इन्द्रियोंमें क्षमता धारण करना, (आर्जवम्) मन, वचन और कर्ममें एकरस रहना, अर्थात् मन, वचन, और कर्मद्वारा कुटिलता न करना, (अहिंसा) शरीर, वचन और मनसे किसी प्राणीको पीडा, न देना ।

'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि, इस उक्तिका समर्थन करना, (सत्यम्) यथार्थ भाषण करना अर्थात् किसीके साथ असत्य संभाषण न करना, (अक्रोधः) क्रोधका परित्याग करना ।

''कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्'

(त्यागः) प्रतिदिन किये हुए श्रौत स्मार्त कर्मोंके फलका त्याग करना अर्थात् कृत कर्मोंके फलकी इच्छा न रखना ।

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूः ॥

इत्युक्तिका समर्थन करना, (शांतिः) प्राप्त वस्तुओंमें शान्त रहना अर्थात् दूसरोंकी उन्नतिको देख कर चित्तमें विकलता न करना, (अपैशुनम्) किसी प्राणीकी अनुपस्थितिमें सत्याऽसत्य बातको ईर्ष्याके भावसे कथन न करना, (भूतेषु दया) धनसे दीन अथवा शरीरसे दीन दुःखी जीवों पर दया करना (अलोलुप्त्वम्) अच्छेसे अच्छे पदार्थोंके संमुख उपस्थित होने पर भी इन्द्रियोंमें विकार न होने देना, (मार्दवं) कोमलता रखना अर्थात् कठोर वचन न बोलना और क्रोधका परित्याग करना, (ह्रीः) दुष्कर्म करनेमें लज्जा करना, (अचापलम्) इन्द्रियों और मनका बिना कारण किसी विषयके लिए चंचल न होना, (तेजः) गुणोंके गौरवसे अपनेमें तेज रखना अर्थात् दूसरा प्राणी उसके गुणोंको देखकर उसे तेजस्वी जाने, (क्षमा) दूसरोंसे किये गये उपद्रवों अर्थात् गाली गलोजको सुनकर सहन करनेकी शक्ति रखनी, (धृतिः) कार्यके बिगड जाने पर भी अर्थात् धनादि पदार्थके नाश हो जाने पर भी धैर्य रखना,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले
दैवात्कदाचिद्गतिमाप्नुयात् सः ।

इस उक्तिका समर्थन करना, (शौचम्) शरीर, मन, और वाणीसे पवित्र रहना, (अद्रोहः) किसी प्राणीके साथ द्रोह न करना अर्थात् धोखा न देना अथवा अपनी बुराई करनेवाले प्राणियोंके विरुद्ध भी आचरण न करना (नातिमानिता) अतिमानका धारण न करना, अर्थात् पूर्वोक्त गुणोंके होने पर भी चित्तमें अभिमान न रखना ।

' अमानी मानदो मान्यः '

इस उक्तिका समर्थन करना, (दैवीं सम्पदं अभिजातस्य भवन्ति) सत्त्व गुणविशिष्ट सम्पत्तिमें उत्पन्न हुए प्राणीके ये कल्याणकारी सात्त्विक गुण होते हैं । १,२,३ ॥

वेदगीता (मंत्र)

[1]अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह
योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च
[2]नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ अथर्व. १९।८।२

अर्थ— मुमुक्षु प्राणी परमात्मासे प्रार्थना करता है, हे परमात्मन् ! (अष्टाविंशानि) अभयता, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञानव्यवस्था, योगव्यवस्था, दान, दम, यज्ञ, श्रौत, स्मार्तयज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, अपैशुन्य, भूतों पर दया, लोभका न होना अर्थात् अलोलुप्त्व, मृदुता ही अर्थात् लज्जा, अचापलता, तेज, क्षमा, धृति, शौच, द्रोहाऽभाव, अतिमानराहित्य यह सात्त्विक धर्म (शिवानि) कल्याण रूप (शग्मानि) सुखकारी (मे) मुझ सात्त्विक प्राणीको सात्त्विक फल देनेके लिये (सहयोगं भजन्तु) सहयोग अर्थात् सहायताको प्राप्त हों । (योगं प्रपद्ये) मैं सात्त्विक पुरुष दैवीसम्पत्तिवाला होकर इन सात्त्विक धर्मोंके प्रभावसे अलभ्यवस्तु अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिके योगको प्राप्त होऊं । अर्थात् अलभ्यवस्तु अपवर्ग (मोक्ष) योगको प्राप्त होजाऊं, (क्षेमं प्रपद्ये) लब्धवस्तुकी रक्षाकी योग्यताको पाऊं । मुझसे ऐसा कोई दुष्कर्म न हो जिससे मैं अपवर्गको खो बैठूं । इस मंत्रमें योग और क्षेमकी प्रधानताकी सिद्धिके लिये द्विरावृत्ति हुई है । (अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु) दिन और रात्रि मुझे दैवी सम्पत्ति रूप सात्त्विक धर्मोंमें चलाती रहें, अतः उन दोनों दिन रात्रिको भी नमस्कार हो, अर्थात् उनका मैं आदर करता हूं, जो मुझे दैवी सम्पत्तिमें रहनेका समय देते हैं ।

स्वामीदयानन्द कृतभाष्य यह है—

अष्टाविंशानीति— हे परमेश्वर ! कृपा करके अठ्ठाईस (मेरे) कल्याणकारक हों । अर्थात् १० इन्द्रिय १० प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर, बल, (शग्मानि) सुखकारक होकर (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रातमें उपासनामय व्यवहार योग मुझे (भजन्तु) प्राप्त हों; तथा आपकी कृपासे मैं योगको पा कर क्षेमको प्राप्त होजाऊं और क्षेमको पाकर योगको प्राप्त होजाऊं, क्योंकि आप हमारे सहकारी होंगे अतः नित्य आपको नमस्कार हो ॥ २ ॥

तुलना— गीता और वेद दोनोंमें अभय, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञान और योगकी स्थिति आदि अठ्ठाईस कल्याणकारी सुखकारी सात्त्विकधर्म एक ही स्वरूपमें बताए हैं । जिस पुरुषमें ये अठ्ठाईस सात्त्विक धर्म रहते हैं, वह संसारमें सुख भोग कर ब्रह्मयोग अर्थात् मुक्तिको प्राप्त कर लेता है । ऐसा कहा है ।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ भग. १६,४

अर्थ— हे अर्जुन ! (दम्भः) अपनी स्वार्थ सिद्धि अथवा अपनी महत्त्वसिद्धिके लिये अपने दोषोंको छिपाकर बगुलाभक्त जैसा दिखावा दिखाना, (दर्पः) अपनी सम्पत्ति अथवा अपने परिवार अथवा अपने धनके घमंडसे सज्जनोंका अपमान करना, (अभिमानः) अपनेमें ही उत्कृष्टताकी बुद्धि रखनी, (च= चकारात् लोभः) लोभ, जो सर्वथा त्याज्य बताया गया है क्योंकि कहा है । ' लोभः पापस्य कारणम् ' ' कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्, भग. (क्रोधः) चित्तको विक्षिप्त करना, (पारुष्यम्) कठोरतासे वार्तालाप करना, (अज्ञानं च) और अज्ञान अर्थात् सदसद्विवेकाऽभाव यद्वा सत्में असत् और असत्में सत् ऐसी विपरीत बुद्धिका होना ये सात

(१) अष्टाविंशानि= पूरणार्थे डट् प्रत्यये कृते ' विंशतेर्डिति ', इति तिलोपः ' द्व्यष्टनः संख्यायाम् ' इत्येष्टशब्दस्य आत्वम् ।

(२) अहोरात्राभ्याम्= अहश्च रात्रिश्च ' अहः सर्वैक देश— ' इत्यच् समासान्तः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोष (आसुरीं सम्पदं अभिजातस्य) प्राणियोंको कष्ट देनेवाली सम्पत्तिमें उत्पन्न हुए हुए पुरुषके होते हैं।

वेदगीता (मंत्र)

सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः
तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥

ऋ. १०।५।६; अथर्व. ५।१।६; निरु. ६।२७

अर्थ— (कवयः) सदसद्विवेकी अर्थात् ज्ञानी पुरुष (सप्तमर्यादाः) दम्भ, दर्प, अभिमान, लोभ, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान, ये सात, यद्वा मद्यपान, दुर्भक्ष्य, पर स्त्री, मृगया, दण्ड, पारुष्य, दूषण ये सात, यद्वा स्तेय, गुरुस्त्रीतल्पारोहण, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, पुनः पुनः दुष्कर्मोंका करना, पाप करने पर असत्य भाषण करना, ये निरुक्तकारके द्वारा बताई सात मर्यादायें हैं, इन सप्त मर्यादाओंको (ततक्षुः) त्याग करते हैं अर्थात् अपनेसे दूर रखते हैं। (तासां एकां) उन सात मर्यादाओंमेंसे एक मर्यादाको ही (अंहुरः) पापी अर्थात् आसुरी जीव (अभिगात्) प्राप्त होता है अर्थात् करता है (यः) जो मनुष्य ऐसी पापमयी मर्यादाओंको अपनाता है (आयोः) इस आसुरी मनुष्यका (स्कंभः) पापियोंको पापका दण्ड देनेवाला परमात्मा (उपमस्य) समीप आ जानेवाले दैवी पुरुषके (नीडे) उत्संगरूप आत्मामें (पथां) सुन्दर मार्गके (विसर्गे) विसर्जन स्थान स्वर्गमें (धरुणेषु) और धर्मके धारण करनेवाले मनुष्योंमें (तस्थौ) ठहरता है अर्थात् परमात्मा धर्मात्मा पुरुषोंके मनमें विराजता है ॥ ६ ॥

तुलना— गीतामें बताया है कि दम्भ, दर्प, अभिमान, लोभ, क्रोध, कठोरभाषण, अज्ञान, यह सात दोष आसुरी जीव अर्थात् पापी जीवमें रहते हैं।

वेदमें कहा है कि धर्मात्मा मनुष्य दम्भ, दर्प, अभिमान, लोभ, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान इन सात दूषित मर्याद ओंको यद्वा मद्यपान दुर्भक्ष्य, स्त्रीसेवन, शिकार, दण्ड, पारुष्य, अन्यदूषित कर्म, इनं सात दूषित मर्यादाओंको यद्वा स्तेय, गुरुस्त्रीतल्पारोहण, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, फिर फिर दुष्कर्म करना, पाप करनेपर भी असत्य बोलना, इन सात दूषित मर्यादाओंका परित्याग करते हैं। जो मनुष्य इनमेंसे एक भी दूषित कर्मको करता है वह आसुरी जीव कहलाता है। जो धर्मात्मा पुरुष इनका परित्याग कर सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, परमात्मा उनकी आत्मामें स्वयं वास करता है।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ भग. १६।५

अर्थ— (हे पांडव) हे पांडुपुत्र अर्जुन ! (दैवी सम्पत्) अभय सत्त्वसंशुद्धि आदि अठ्ठाईस दैवी सम्पतियें पुरुषके (विमोक्षाय) संसारसे छुडानेके लिये अर्थात् विमुक्तिके लिये (मता) कही गई हैं, (आसुरी संपत्) काम क्रोधादि सात आसुरी सम्पतियां (निबंधाय) संसारमें वारंवार जन्म मृत्यु दिलानेके लिये (मता) कही गई हैं। (दैवीं सम्पदं) तू दैवी सम्पत्तिमें (अभिजातः असि) उत्पन्न हुआ है अर्थात् तुझमें सब दैवी सम्पत्तियें विद्यमान हैं, (मा शुचः) अतः तू किसी प्रकारका शोक मत कर। तू युद्ध करता हुआ भी पापसे लिप्त न होगा, प्रत्युत मुक्त हो जाएगा।

वेदगीता (मंत्र)

इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो
गोपाः पुष्टपतिर्वः आजत् । अथ. ३।८।४

अर्थ— हे जीवात्माओ ! (इह) अभय, सत्त्वसंशुद्धि आदि आठ्ठईस दैवी सम्पत्तिमें (इत्) ही (असाथ) सर्वदा स्थिर रहो अर्थात् दैवी सम्पत्तिमें वास करो। (परः न गमाथ) इस दैवी सम्पत्तिसे दूर मत जाओ। (इर्यः) सद्व्यवहारसे उपार्जन किये हुए अन्नादि पदार्थोंसे युक्त (गोपाः) इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले (पुष्टपतिः) दैवी सम्पत्तिका पोषण करते हुए (आजत्) इस लोकमें रहो।

तुलना— गीतामें कृष्णजीने कहा है अभय, सत्वसे शुद्धि आदि दैवी सम्पत्ति संसार बंधनसे मुक्त करती है और असुरी सम्पत्ति संसारमें जन्म मृत्युके बंधनमें लाती है, वेदमें भी यही कहा है हे जीवात्माओ ! वस्तुतः तुम सब दैवी सम्पत्तिमें उत्पन्न हुए हो। अपनेमें उसी दैवी संपत्तिको पुष्ट करते हुए सब मिलकर इस संपत्तिमें वास करो।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ भग. १६।६

अर्थ— हे अर्जुन ! (अस्मिन् लोके) इस संसारमें (दैवः आसुरः एव च) दैवी और आसुरी अर्थात् राक्षसी ही सृष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(द्वौ) दो प्रकारवाली (भूतसर्गौ) पांच भौतिक मानी हुई है। (दैवः) दैवी सृष्टिका वर्णन (विस्तरशः) विस्तारसे (प्रोक्तः) कहा है। (हे पार्थ!) हे पृथापुत्र अर्जुन! (मे) मुझसे (आसुरं) आसुरी सृष्टिको (शृणु) सुन।

वेदगीता (मंत्र)

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावान् शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः॥ यजु. ३३।५

अर्थ—(द्वे) दो भूत सृष्टियें अर्थात् दैवी सृष्टि और आसुरी सृष्टि (विरूपे) विरुद्ध स्वरूपवाली एक रक्षक और दूसरी घातक (स्वर्थे) अपने अपने विचारमें गमन करनेवाली अथवा अपने अपने प्रयोजनवाली (चरतः) संसारमें चलती रहती हैं। (अन्यान्या) अन्य अन्य अर्थात् पृथक् पृथक् स्वरूपवाली (वत्सं उपधापयेते) दैवी संपत्ति अपने दैवी पुत्रको और आसुरी संपत्ति अपने आसुरी पुत्रको अपने अपने रस स्वरूप कर्म फलको पान कराती रहती हैं। (अन्यस्यां) एक आसुरी सृष्टिमें (हरिः) सब शुभ कर्मोंके फलोंको हर लेनेवाला आसुरी जीव (भवति) उत्पन्न होता है। (अन्यस्यां) एक दैवी सृष्टिमें (स्वधावान्) प्रशस्त शान्ति, अभयादि अमृत गुणोंवाला (सुवर्चाः) तेजस्वी (शुक्रः) निर्मल ज्ञानवाला अर्थात् सत्वगुण विशिष्ट दैवी जीव (ददृशे) दृष्टिगोचर होता है।

तुलना—गीतामें भूत सृष्टि दो प्रकारकी कही है। एक दैवी सृष्टि और दूसरी आसुरी सृष्टि।

वेदमें भी यही कहा है। संसारमें परस्पर विरुद्ध रूपवाली दो भूत सृष्टियें चल रही हैं, एक दैवी दूसरी आसुरी सृष्टि। दैवी सृष्टिमें दैवी जीव उत्पन्न होते हैं और आसुरी सृष्टिमें आसुरी जीव पैदा होते हैं। दैवी सम्पत्ति दैवी जीवोंको दैवी सम्पत्तिका रस पिलाकर उन्हें दैवो कर्मोंमें परिपुष्ट करती है और आसुरी संपत्ति आसुरी जीवोंको आसुरी कर्मोंके रससे पुष्ट करती है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ भग. १६।७

अर्थ—(आसुराः जनाः) आसुरी सम्पत्ति अर्थात् दंभ दर्प, अभिमानादि आसुरी सम्पत्तिमें वास करनेवाले तामसी मनुष्य (प्रवृत्तिं) शास्त्राऽनुसार संध्या देवोपासनादि धार्मिक कर्मोंमें प्रवृत्तिको और छलकपटादि पापी वृत्तियोंसे (निवृत्तिं च) निवृत्ति अर्थात् पाप कर्मोंसे दूर रहनेको (न विदुः) नहीं जानते और (तेषु) उन आसुरी जीवोंमें (न शौचं) देह और वस्त्रादिकी शुद्धि (न चाऽपि आचारः) और न सद्व्यवहार (न सत्यं) और न ही सत्यभाषण (विद्यते) रहता है।

वेदगीता (मंत्र)

नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत्।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत्॥

अथ. २।३।३

---

(१) स्वर्थे = 'ऋ-गतौ' 'उशिकुषिगार्थिभ्यः स्थन्' इति भावे कर्मणि वा थन् प्रत्ययः।

(२) अन्याय = कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवतः, 'समासवच्च बहुलम्' इति द्वित्वम्।

(३) धापयेते 'धेट्-पाने' 'आदेश उपदेशे शिति' इत्यात्त्वम्, हेतुमति णिच्- 'अर्त्तिह्री०' इति पुगागमः तत्र लक्षण प्रतिपदोक्तपरिभाषा नास्तीति ज्ञापितम्। 'शाछासा०' कृतात्वातनिर्देशेन सहि पुक् प्राप्तिख्यापनार्थः, यदि तत्र लक्षण-प्रतिपदोक्तपरिभाषया पुक् न प्राप्नोति सोऽनर्थकः स्यात्तस्मात् अध्यापयतीत्यादाविव 'धापयेते' इत्यत्राऽपि पुगागमः सिद्धः। 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' इति प्राप्तस्य परस्मैपदस्य 'पादिषु धेट् उपसंख्यानम्' इति प्रतिषेधादात्मनेपदम्।

(४) 'हृञ्-हरणे' औणादिक इन् प्रत्ययः।

(५) ददृशे- 'दृशेश्छन्दसि' लुङ्, लङ्, लिट् इति वर्तमाने लिट्।

(६) असुराः = 'असेरुरन्' इति उरन् प्रत्ययः।

(७) अरुस्राणम् = 'स्रै-पाके' अधिकरणे ल्युट् उरु स्रयति, पक्वं भवति, उपशमनोन्मुखं भवति अनेनेति उरुस्राणम्।

(८) आस्रावस्य = 'स्रु गतौ' अस्मात् आङ् पूर्वात् 'श्याद्व्यधासुस्रुसं०' इत्यादिना 'ण प्रत्ययः' 'अचोञ्णिति' इति वृद्धिः।

(९) रोगं= 'रुज्यते भज्यते शरीरं अनेनेति रोगः' 'हलश्च' इति करणे घञ् प्रत्ययः 'चजो कु०' इति कुत्वम्।

(१०) अनीनशत्= नशेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ— (असुराः) असु अर्थात् छलकपटादिसे जो दूसरोंके प्राणोंको ग्रहण करते हैं अर्थात् हड़प कर जाते हैं, यद्वा जो अपने शरीरोंको काम क्रोधादि दुष्कर्मोंसे नरकमें (क्षिपन्ति) डालते हैं, वह तमोगुण प्रधानतावाले आसुरी मनुष्य (इदं) सामने स्पष्ट प्रतीत होते हुए (महत्) सबसे उच्च (अरुप्राणम्) स्वप्रकाशसे परिपक्व अर्थात् मुक्तिधामको (नीचैः खनन्ति) नीचे ही खोदते हैं अर्थात् अपने दुष्कर्मोंके प्रभावसे उच्च पदका परित्याग करके नरकादि नीच योनियोंको प्राप्त करते हैं, वही आसुरी जीव जन्ममृत्यु द्वारा नीचसे नीच गतिको पाते हैं। (तत्) सर्वव्यापक ब्रह्म ही (आस्रावस्य) (आ समन्तात्) चारों ओर स्रव करनेवाला अर्थात् चलनेवाला जन्ममरणात्मक रोग अर्थात् पुनः पुनः जन्ममरणात्मक रोगका (भेषजं) औषधरूप है। दैवी जीवोंके लिये 'औषधं जान्हवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः' यह किंवदन्ती सत्य हो जाती है। (तत् उ) वह परब्रह्म ही (रोगं) मनुष्यको दुःखी करनेवाले जन्ममरणात्मक आसुरीभावरूपी रोगको (अनीनशत्) नाश करता है अर्थात् शुभ कर्मोंके करनेसे आसुरी रोगका नाश हो जाता है।

तुलना— गीतामें कहा है, आसुरी सम्पत्तिवाले जीव धर्म मर्यादाकी प्रवृत्ति और धर्मविरुद्ध कर्मोंसे निवृत्तिको नहीं जानते, उनमें शुद्धाऽशुद्ध वस्तुका विचार और सद्व्यवहारकी प्रवृत्ति तथा सत्यभाषण नहीं होता। वेदमें भी यही कहा है आसुरी जीव ब्रह्म प्राप्तिके मार्गको छोड़कर, बुरे कर्मोंके करनेसे जन्ममरणात्मक नीच योनियोंको बार बार प्राप्त होते हैं। वह ब्रह्मोपासनासे दूर रहते हैं। जो जीव सत्कर्मों द्वारा ब्रह्मोपासना करते हैं। परमात्मा ही उनके जन्ममरणात्मक रोगका नाश कर देता है, अर्थात् वह दैवी जीव मुक्त हो जाते हैं।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ भग. १६।८

अर्थ— (ते) वे आसुरी संपत्तिवाले मनुष्य (जगत्) इस संसारको (असत्यं) स्वाप्निक पदार्थकी तरह मिथ्या (अप्रतिष्ठं) और धर्म अथवा अधर्मके कारण संसार चलता है इस स्थिति अर्थात् मर्यादासे रहित (अनीश्वरं) इसका कोई स्वामी अथवा नियंता नहीं है अर्थात् ईश्वर सत्तारहित है ऐसा (आहुः) कहते हैं। तथा (अपरस्परसंभूतं) प्रकृति और पुरुष अर्थात् स्त्री पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है। ऐसा कहते हैं। (कामहैतुकम्) स्त्रीपुरुषकी कामचेष्टा ही संसारोत्पत्तिका कारण है, ऐसा मानते हैं। (किम् अन्यत्) और कुछ भी संसारका कारण नहीं अर्थात् जिसको किसीने देखा नहीं क्या वह कारण हो सकता है अतः (अन्यत्) अदृष्ट अर्थात् धर्माधर्म संसारकी प्रतिष्ठाका कारण नहीं है।

वेदगीता (मंत्र)

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति। नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम॥ ऋ. ८।१००।३

अर्थ— हे मनुष्यो ! (वाजयन्तः) अपने उदरकी पालनाके लिये केवल अन्न और बलकी कामना करते हुए तुम सब अथवा 'वाजि इति संग्रामनाम' संसार संग्रामको चाहते हुए भी तुम सब (इन्द्राय) परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्माके लिये ही (सत्यं स्तोमं) सच्ची स्तुतिको (सु-प्र-भरत) अच्छी रीतिसे पूर्णतया करो। परंतु आसुरी सम्पत्तिवाले मनुष्य ऐसा कहते हैं। (यदि) यदि (सत्यं अस्ति) सत्य ही सत्यरूप ईश्वर है तो उसकी स्तुति करें, परंतु (नेमः इन्द्रः) प्रसिद्ध यशवाला परमात्मा (त्वः) कोई (न अस्ति) नहीं है। क्योंकि (कः ईं ददर्श) किसने इस परमात्माको प्रत्यक्ष रूपसे देखा, अर्थात् किसीने नहीं देखा। अतः इस जगत्को स्त्री पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ हुआ और स्त्री पुरुषकी कामचेष्टाके कारणरूप, ईश्वर सत्तासे रहित, जगत्को मिथ्या मानते हुए हम (कं अभिस्तवाम) किस ओंकार नाम परमेश्वरकी स्तुति करें, अतः जगत्का स्वामी कोई है जिसे परमात्मा कहते हैं यह वादमात्र है, न कि सत्य रूप, यह आसुरी सम्पत्तिवालोंका विचार है।

तुलना— गीतामें आसुरी सम्पत्तिवाले जीव जगत्को ईश्वर सत्तासे रहित, मिथ्या, धर्माधर्म मर्यादासे शून्य और केवल स्त्री पुरुषके संयोगसे जगत् उत्पन्न होता है इसमें ईश्वरकी सत्ता कारण नहीं है ऐसा मानते हैं वेदमें प्रश्नरूप मंत्र देकर कहा है हे जीवात्माओ ! सत्यस्वरूप, जगदुत्पादक, धर्माधर्म मर्यादा स्थापक परमेश्वरकी स्तुति करो, परंतु आसुरी जीवोंका यह कहना है कि इस संसारमें ईश्वरको प्रत्यक्ष रूपसे किसने देखा है, अतः हम किसकी स्तुति करें, कोई परमेश्वर नहीं है, स्त्री पुरुषके संयोगसे जगत् चल रहा है, इसको चलानेवाली और कोई सत्ता नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ भग. १६।९

अर्थ— (एतां दृष्टिं) संसारका कर्ता और स्वामी कोई नहीं है यह केवल स्त्री पुरुषके संयोगसे उत्पन्न होता है, इस विचारदृष्टिका (अवष्टभ्य) आश्रय लेकर (नष्टात्मानः) काम क्रोध लोभादिसे गिरे हुए मनवाले (अल्पबुद्धयः) अनात्मक तुच्छ देहमें आत्मबुद्धि रखते हुए (उग्रकर्माणः) हिंसा, छल, कपटादि बुरे बुरे कर्मोंको करते हुए (अहिताः) परोपकार, परपोषणादि भलाईसे शून्य होकर (जगतः क्षयाय) जगत्के नाशके लिये अर्थात् प्राणिमात्रकी अधोगतिके कारणरूप होकर (प्रभवन्ति) जगत्में उत्पन्न होते हैं ।

वेदगीता (मंत्र)

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे
स च त्वाऽनु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥

अथ. ५।३०।१७

अर्थः— हे जीवात्मन् ! (अयं लोकः) यह समक्ष दृष्टिगोचर होता हुआ संसार अर्थात् देह (प्रियतमः) प्राणिमात्रको परमप्रिय लगता है, परन्तु आसुरी जीवोंका तो परम प्यारा यह देह ही है । (देवानां अपराजितः) ज्ञानी लोगोंसे भी जीता नहीं जा सकता अथवा इन्द्रियोंसे भी अर्थात् इन्द्रियोंके वश करनेपर भी पूरा जीता नहीं जा सकता । क्योंकि कहा है– 'बलवानिन्द्रियग्राम, विद्वांसमपि कर्षति (त्वं पुरुष)– तू जीवात्मा (यस्मै) जिस देहके कारण (इह) इस देहमें स्थित होकर (मृत्यवे दिष्टः) मृत्युके लिये जतलाया हुआ (पुरुषः) तू देहमें शयन करनेवाला नित्य भी (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है, अर्थात् जन्म लेता है । देहके नाश होनेपर जीवात्माकी मृत्यु भी औपचारिक कही जाती है, वस्तुतः मृत्यु तो देह ही की है न कि आत्माकी । (स च) और वह तू जीवात्मा उस देहसे पृथक् है । (त्वा) तुझ जीवात्माका (अनुह्वयामसि) फिर फिर आह्वान करता हूँ अर्थात् संबोधित करता हूँ, (जरसः पुरा) जरावस्था अर्थात् वृद्धाऽवस्थासे पहले (मा मृथाः) मत मृत्युको प्राप्त हो । यदि तू दैवी सम्पत्तिमें वास करेगा तो शुभ कर्मोंके करनेसे पूर्णायु भोगेगा, यदि तू आसुरी सम्पत्तिको अपनाएगा, तो अभोग्य भोगनेसे युवाऽवस्थामें ही मर जाएगा ॥ १७ ॥

तुलना— गीतामें कहा है आसुरी सम्पत्तिवाले जीव, मानसिक सदुपयोगसे रहित होकर प्रत्युत बुरे कर्मोंको करते हुए, परहितसे शून्य होकर जगत्के नाशके लिये ही जन्म लेते हैं ।

वेदमें कहा है, यह संसार अर्थात् देह सबको प्रिय है । देवता भी इसीके अधीन हो जाते हैं, यह नित्य आत्मा देहको ही अपना समझती है, उसके आधीन होकर आसुरी सम्पत्तिको अपनाती है, जिससे यौवन कालमें मृत्यु होती है, परमात्मा उपदेश देता है, यदि पूर्णायु भोगनेकी तेरी इच्छा है, तो दैवी सम्पत्तिको अपना ।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥

भग. १६।१०

अर्थ— (दंभमानमदान्विताः) दम्भः = दिखावेके लिये धार्मिक चिन्ह रखना, मान = अपने आपको सबसे उत्तम दिखानेका प्रयत्न करना, मद = धन, बल, परिवारकी अधिकता जतलानेकी मस्ती, इनसे युक्त हुए हुए आसुरी जीव (दुष्पूरं कामं) विषयोपभोगसे न पूरी हो सकनेवाली अथवा कठिनतासे पूरी होनेवाली कामना अर्थात् इच्छाको (आश्रित्य) आश्रय करके (मोहात्) आसुरी सम्पत्तिके मोह वशसे (असद्ग्राहान्) न ग्रहण करने योग्य भी अनर्थोत्पादक वस्तुओंको (गृहीत्वा) लेकर (अशुचिव्रताः) अपवित्र नियमवाले होकर (प्रवर्तन्ते) जगत्के विनाशके लिये प्रवृत्त रहते हैं ।

वेदगीता (मंत्र)

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे
अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता
असन्नस्त्वाऽसत इन्द्र वक्ता ॥

अथर्व. ८।४।८; ऋ. ७।१०४।८

अर्थ— (इन्द्र !) हे जीवात्मन् ! (यः) जो मनुष्य दम्भमान मदसे युक्त होकर अशुद्ध नियमोंपर चलता हुआ, आसुरी सम्पत्तिवाला नास्तिक (पाकेन मनसा) अन्यायाचरणसे परिपक्व मनसे (चरन्तं मा) सर्वत्र गतिशील होनेसे व्यापक स्वरूप मुझ परमात्माको (अनृतेभिः वचोभिः) जगत्का कर्ता-धर्ता, ईश्वर नहीं है, और न परलोक है और न कर्मफल है, इत्यादि असत्य वचनोंसे (अभिचष्ट) वर्णन करता है । (असतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बना) विनश्वर देह और उसकी इन्द्रियें ही संसारमें सत्य और इससे भिन्न आत्मा कोई नहीं है, यही सब कुछ है इसका ही वर्णन करता हुआ (असंन्) मुक्तिपदमें अविद्यमान अर्थात् मुक्तिसे भ्रष्ट हुआ हुआ (भवतु) होता है (काशिना संगृभीता आपः इव न) जैसे मुष्टिमें पकडा हुआ जल अंगुलियोंकी छेदोंसे निकल कर मुष्टिमें विद्यमान नहीं रहता ऐसे आसुरी जीव भी मुष्टिसे जलकी तरह मुक्तिपदसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

तुलना— गीतामें कहा है, जब मनुष्य दम्भी, मदमस्त मान्याऽवस्थामें प्राप्त होता है, तब कठिनसे कठिन कामनाओंका सहारा लेकर, अग्राह्य वस्तुओंको ग्रहण कर लेता है, फिर अशुद्ध नियमोंमें प्रवृत्त हो जाता है, जिससे उसकी असद्गति होती है, और वह जन्म मरणके बंधनमें फंसा रहता है।

वेदमें भी कहा है, जो प्राणी अशुद्धाचरणों द्वारा परिपक्व मनसे सर्वव्यापक परमात्माको 'कोई ईश्वर नहीं और परलोक नहीं' इत्यादि असत्य वचनोंसे वर्णन करता है और देहको ही आत्मा मानता है, वह प्राणी मुक्ति पदसे बहुत दूर रहता है, वह आसुरी जीव कहा जाता है ॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥

भग. १६।११-१२

अर्थ— (अपरिमेयां) तोल और मापके परिमाणोंसे बाहर अर्थात् बहुत (प्रलयान्तां) मृत्युपर्यन्त जानेवाली (चिन्तां) चिन्ताको (उपाश्रिताः) आश्रित किये हुए (कामोपभोगपरमाः) कामनाओंके उपभोगको परम उद्देश्य माननेवाले (एतावत् इति निश्चिताः) विषयजन्य सुख ही सुख है, इससे भिन्न और कोई सुख नहीं है इतने निश्चयवाले होकर (आशापाशशतैः बद्धाः) सैंकडों ही अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्तिमय आशा रूपी जालसे बंधे हुए (कामक्रोधपरायणाः) काम और क्रोधमें तत्पर (कामभोगार्थं) अपनी कामनाओंके उपभोगके लिये (अन्यायेन) अनीति अथवा अनर्थसे (अर्थसंचयान्) धनके उपार्जन करनेका (ईहन्ते) प्रयत्न करते हैं ॥

वेदगीता (मंत्र)

तेऽधराञ्चः[1] प्लवन्तां[2] छिन्ना नौरिव बंधनात् ।
न वै बाधप्रणुत्तानां[3] पुनरस्ति निवर्तनम् ॥

अथर्व. ३।६।७

अर्थ— (ते) जन्मसे लेकर मृत्युतक बहुत प्रकारकी चिन्ता रखनेवाले, कामी, क्रोधी, दम्भी, लोभी बने हुए, दिन रात विषय वासनामें लम्पट आसुरी जीव (अधराञ्चः) अधोगतिको लेजानेवाले काम क्रोध लोभ दम्भादि विषयोंकी ओर जाते हुए, अर्थात् परमात्मासे विमुख हुए हुए (प्लवन्तां) संसार समुद्रके प्रवाहमें उछलते कूदते रहते हैं अर्थात् पुनः पुनः नीच योनियोंमें जन्म लेते रहते हैं। न कि संसाररूपी समुद्रसे पार होकर जन्ममरणके बंधनसे छूट जाते हैं। (बन्धनात् छिन्ना नौः इव) नदीके तीर पर रस्सी द्वारा वृक्षादि बंधनसे काटी हुई अर्थात् भिन्न हुई हुई नौका जिस तरह नदीके प्रवाहसे दूर बहा ले जाई जाती है, फिर अपने स्थानपर नहीं आती, ऐसा मनुष्य भी परमात्माके नियम बंधनोंसे छूटा हुआ संसारसमुद्रमें जन्ममरणके प्रवाहमें बहता रहता है। (वै बाध प्रणुत्तानां) विशेष विशेष प्रकारकी काम क्रोधादि बाधाओंसे प्रेरित हुए हुए आसुरी जीवोंका (पुनः निवर्तनं न अस्ति) फिर संसार समुद्रसे पार होनेका कोई मार्ग नहीं है अर्थात् मुक्तिपथ पर वापिस नहीं आते।

तुलना— गीतामें कहा है सांसारिक विषयोंका अधिक चिन्तन करनेवाले, सांसारिक विषयोंके उपभोगमें ग्रस्त आसुरी जीव, अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये अन्यायसे धनोपार्जन करनेका प्रयत्न करते हैं; इसी कारण सदा नीच योनियोंमें जन्म लेते रहते हैं, परमात्मासे दूर रहते हैं वेदमें भी यही कहा है, कि कामी, क्रोधी, लोभी, आसुरी जीव संसार समुद्रमें डूबे रहते हैं, जैसे बंधनसे कटी हुई नौका नदी प्रवाहमें बह कर फिर वापिस नहीं आती। ऐसे आसुरी जीव भी परमात्मासे विमुख होकर, परमात्मासे दूर ही रहते हैं ॥ ८ ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

---

(१) अधराञ्चः = अधरशब्दोपपदात् अञ्चते क्विन्।
(२) प्लवन्ताम् = प्लुङ् प्लुङ् गतौ भ्वादि।
(३) प्रणुत्तानाम् = 'नुदविदोन्दात्राघ्राहीभ्योऽन्तरस्याम्' इति विकल्पनात् निष्ठायाः नत्वाभाव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

अर्थ— (मया अद्य इदं लब्धं) मैंने आज यह वस्तु पाली है (इमं मनोरथं प्राप्स्ये) इस वस्तुके पानेसे मैं इस मनोरथको पा लूंगा (इदं अस्ति इदं अपि मे) यह घर मेरा है और यह दृश्यमान वस्तु भी मेरी है (पुनः इदं धनं अपि मे भविष्यति) इस पुरुष (चाचा, भ्राता आदि) की मृत्युके बाद इसका धन भी मेरा धन होगा । (मया असौ शत्रुः हतः) मैंने वह दूर रहनेवाला शत्रु मार दिया है (च अपरान् अपि हनिष्ये) और दूसरे उसके साथी शत्रुओंको भी मार दूंगा । (अहं ईश्वरः) मैं धन, जन, घरका स्वामी हूं अथवा मैं देशका राजा हूँ (अहं भोगी) मैं सांसारिक पदार्थोंका भोक्ता अर्थात् विषय वासनाका आनंद लेनेवाला हूं (अहं सिद्धः) मैं सब कार्य करनेमें निपुण हूं अथवा योग समाधिद्वारा सिद्ध हो चुका हूँ । (अहं बलवान्) मैं बली हूँ । (अहं सुखी) मैं सब प्रकारसे सुखी हूं । (आढ्यः अस्मि) मैं परिपूर्ण धन होनेसे सेठ हूँ । (अभिजनवान् अस्मि) मैं बहुत परिवारवाला हूं । (मया सदृशः अन्यः कः अस्ति) इस संसारमें मेरे समान और कौन है । (यक्ष्ये) अपने मनकी वृद्धिके लिये यज्ञ करता हूं और यज्ञ करूंगा (दास्यामि) यज्ञमें अपने नामकी प्रसिद्धिके लिये नट और गाने बजानेवालोंको धन दूंगा । (मोदिष्ये) नटादियोंको धन देकर और स्वयं भी भोजन करके प्रसन्न हूंगा । (इति अज्ञान वि मोहिताः) इत्यादि अज्ञानसे मोहित हुए हुए (अनेकचित्तविभ्रान्ताः) यह पा लिया, इसे पालूंगा, यह मेरा धन है, यह मेरा परिवार है इत्यादि अनेक प्रकारके चित्तविकारोंसे भ्रांत हुए हुए (मोहजालसमावृताः) सदसद्विवेक शून्यतामय मोह जालोंसे घिरे हुए (कामभोगेषु प्रसक्ता) इच्छित सांसारिक विषयोंके उपभोगोंमें लगे हुए (अशुचौ नरके) रौरवादि परम अशुद्ध नरकोंमें अर्थात् नीचसे नीच योनियोंमें (पतन्ति) गिरते हैं अर्थात् अत्यंत अधोगतिको पाते हैं ॥ १६ ॥

वेदगीता (मंत्र)

न हि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षञ्चन प्रति ।
कुवित्सोम[1]स्यापा[2]मिति ॥ ऋ. १०।११९।८
हन्ताऽहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ऋ. १०।११९।९

अर्थ— (उभे = उभयोः, रोदसी = रोदस्योः) आकाश और पृथिवी दोनोंके मध्यमें (मे अन्यं प्रतिपक्षं) मेरा प्रति पक्ष अर्थात् मेरे जैसा और (न हि) कोई नहीं है । (इति) इसलिये (कवित् सोमस्य (सोमं) अपाम्) निश्चयसे बहुत बार अमृतमय औषधियोंका अनुपान करता हूं ॥ ८ ॥

(हन्त) यह मैं संभावना करता हूँ अथवा मैं जानता हूँ (अहं) मैं बलवान् राजा होकर (इमां पृथिवीं) इस सारी पृथिवीको अर्थात् पृथिवी पर वास करनेवाले लोकोंको (इह निदधानि) इस अपने हाथमें धारण करता हूँ अर्थात् इस पृथिवीलोकके मनुष्य मेरे वशमें हैं । क्योंकि मैंने बहुत बार बलवर्द्धक औषध पान किया हुआ है ॥ ९ ॥

वेदगीता (मंत्र)

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत्समश्नुते ।
तावत्समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥
अथ. ३।२२।५

अर्थ— (चतस्रः प्रदिशः) पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ये चारों दिशाएँ और चारों दिशाओंके कोण (यावत्) जितने तक फैले हुए हैं (यावत् चक्षुः समश्नुते) जितने पर्यंत मेरा नेत्र व्याप्त होता है अर्थात् देखता है (तावत्) उतने तक अर्थात् उतना ही (इन्द्रियम्) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य युक्त धनाढ्यका चिह्न रूप धन (समैत) सम्यक्तया प्राप्त होता है (तत्) उस धन और जनसे उत्पन्न हुआ हुआ (हस्तिवर्चसम्) हाथीके बलकी तरह बल (मयि) मुझ धनीमें विद्यमान है, अतः मेरे समान इस संसारमें और कौन हो सकता है ।

---

(१) सोमस्य– क्रियाग्रहणं कर्तव्यम् , इति सोमस्य सम्प्रदानसंज्ञा– ' चतुर्थ्यर्थे बहुलम् ' इति षष्ठी ।

(२) अपाम्– पा = पाने, ' गातिस्था० ' इति सिचो लुक् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १।।) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu